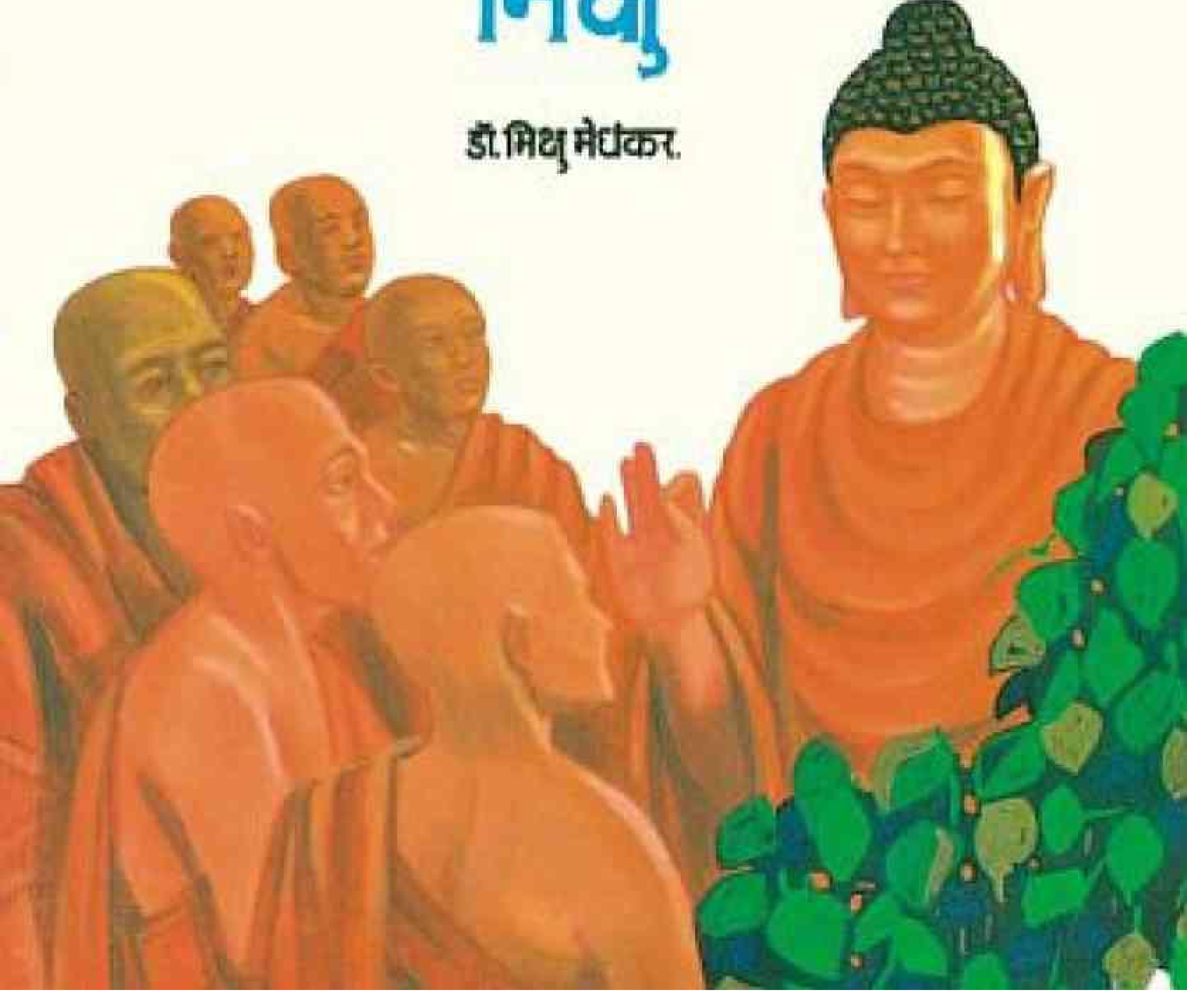
बुद्ध और उनके समकालीन भिक्षु

डॉ. भिक्षु मेधंकर.



बुद्ध और उनके समकालीन भिक्षु

डॉ. भदन्त सावंगी मेधंकर

बुद्धभूमि प्रकाशन, नागपुर

द्वितीय संस्करण : २०००
२४-१०-१९९३

प्रकाशक :
काशीनाथ मेश्राम,
बुद्धभूमि प्रकाशन,
बुद्ध भूमि, कामठी रोड,
नागपुर – ४४१ ००२
फोन नं. ६८८७३२

मुद्रक :
विज्ञानेश्वर श्या. बनहट्टी,
श्रीनिवास मुद्रणालय,
सुविचार प्रकाशन इमारत,
धनतोली,
नागपुर – ४४० ०१२

पुस्तक प्राप्तिस्थान :
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन बुक डेपो,
राहुल बाल सदन,
महेन्द्र नगर,
नागपुर – ४४० ०१७.
फोन न. ६४०३६०

Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
Mobile Web : m.budaedu.org

भूमिका

'बुद्ध और उनके समकालीन भिक्षु' नाम से ही ज्ञात होता है कि यह पुस्तक उन कुलपुत्रों के जीवन वृत्त हैं जो बुद्ध की अमृतवाणी सुनकर एक झटके में सब कुछ छोड़छाड़ कर गृह–त्यागी बने। एक बार सब छोड़ घर से निकले तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। जो त्याग दिया सो त्याग दिया, उस की ओर मुड़कर क्या देखना।

संसार के इतिहास में बुद्ध के समान दूसरा कोई नहीं है। वे यथार्थवादी और व्यवहारवादी थे। अंदर बाहर एक जैसे। जो मार्ग उनके अपने लिये ठीक था वही दूसरों के लिए सही समझा। वे सभी को उस मार्ग पर लेकर गये। जब राहुलकुमार ने उत्तराधिकार मांगा तो उन्होंने अपने राज्य में प्रवेश दिलाया। नन्दकुमार को संसारिक दुःख में पड़ने से पूर्व ही अपना पात्र देकर पीछे चलने की आज्ञा दी और वह ऐसा चला गया कि लौटकर आने का होश ही नहीं रहा।

जिसने भी भगवान बुद्ध को एक बार सुना वह उनका ऐसा दीवाना बना कि सारी सुध बुध ही खो बैठा।

वाराणसी का यश कुलपुत्र, क्या नहीं था उसके पास, पर एक वस्तु नहीं थी, मन की शांति। वह उसे बुद्ध के पास मिली तो वह वापसी का रास्ता ही भूल गया। उरुवेला के जटिल काश्यप बंधु अपनी सारी परंपरा को त्याग बुद्ध की शरण गये। सारिपुत्र ने तो बुद्ध को देखा ही नहीं था, केवल अश्वजित से एक गाथा मात्र सुनी और अपने मित्र मौद्गल्यायन के साथ बुद्ध के पास खींचता चला गया। कुरु जनपद के श्रेष्ठीपुत्र राष्ट्रपाल ने एक बार बुद्ध की अमृतवाणी सुनी तो अपार वैभव को त्यागने के लिये छटपटाया। गृहत्याग

के लिये सात दिन तक कड़ी धूप में सत्याग्रह किया । अंगुलिमाल बुद्ध के एक शब्द पर क्यों जाग उठा ?

जैसे चमचमाते तारे चद्रमा के चारों ओर मंड़राते हैं वैसे ही कुछ ही वर्षों में बुद्ध के चारों ओर हजारों अनमोल भिक्षुरत्न जमा हुये । उनमें ऐसे भी थे जिन के पास कुछ भी नहीं पर उनमें अधिकांश ऐसे भी थे जिनके पास सब कुछ था । आखिर बुद्ध के पास क्या था ? क्यों ये सारे लोग उनकी एक ही आवाज पर दीवानों की तरह उनके पीछे पीछे हो लिये ? क्या बुद्ध मायावी थे ? क्या वे जादूगार थे ? जैसे अन्य मतावलंबी उनको समझते थे ।

बुद्ध के पास सत्य था और उसे व्यक्त करने के लिये मधुर वाणी थी जो करुणा से ओतप्रोत थी जिसमें संसार के प्राणियों के लिये अभयदान था ।

हजारों सालों से इन कुल पुत्रों के जीवनवृत्तों ने मनुष्यों का मार्ग प्रसस्त किया । उनके जीवनों के अंश पालि साहित्य में हर जगह बिखरे हैं । थेरगाथा अपदान, आदि अट्ठकथा साहित्य में सारी जीवनगाथायें सुरक्षित हैं ।

१९५९ से १९६८ तक श्रीलंका में त्रिपिटक के अध्ययन काल में यह पुस्तक लिखी गई थी । वास्तव में यह अभावगत पूज्यचरण गुरुवर्य डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन की प्रेरणा से ही लिखी गई थी । यह उन्हीं को समर्पित है ।

इसका प्रथम संस्करण सन १९८६ में सिद्धार्थ गौतम शिक्षण व सांस्कृतिक समिति घनसारी, अलिगढ़ की ओर से प्रकाशित हुआ था । अब सात वर्ष बाद इसका द्वितीय संस्करण बुद्धभूमि प्रकाशन की ओर से प्रकाशित हो रहा है । इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने का सबसे अधिक श्रेय बुद्धभूमि प्रकाशन के आयु. काशीनाथ मेश्राम एवं बालग्राम की संचालिका आयुष्मती विमल आळे को जाता है । प्रूफ लाने–ले जाने का काम यदि आयु. रवि मेश्राम न करता तो बड़ी कठिनाई होती । मेरे अस्वस्थ होने पर प्रूफ देखने का सारा काम मेरे अन्तेवासी भिक्षु अश्वघोष ने पूरा किया । अनिलकुमार बनकर का भी अनल्प सहयोग रहा । श्रीनिवास मुद्रणालय, नागपुर के आयु. विज्ञानेश्वर

बनहट्टी एवं अन्य कर्मचारी वर्ग ने इसके मुद्रण में काफी मेहनत की, सभी बहुत बहुत धन्यवाद के अधिकारी हैं।

अन्त में धम्मदान के प्रति पुन्यानुमोदन। इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये **श्रीमती रजनी मेश्राम, छत्रपति नगर, रिंगरोड, नागपुर से १०००/– एवं श्रीमती कान्ताबाई वसंत कठाणे, नवा नकाशा, लक्ष्मी कुटी, नागपुर से रु. ५००/–** धम्मदान प्राप्त हुआ। दोनों उपासिकाएं पुण्य की अधिकारिणी हैं।

कलम रखने से पूर्व दो शब्द और विज्ञ पाठकों के लिये। इन कुलपुत्रों के जीवन वृत्तों के माध्यम से भगवान बुद्ध का अमर संदेश आपतक पहुंचाने का यह एक विनम्र प्रयास है। इससे आपके ज्ञान भण्डार में कुछ वृद्धि हुई तो इन पंक्तियों का लेखक अपना प्रयास सफल समझेगा।

बुद्धभूमि, नागपुर
१४–१०–१९९३

भिक्षु मेधंकर

निर्देशिका

बुद्ध और उनके समकालीन भिक्षु

★

सिद्धार्थ कुमार बुद्धत्व की ओर

★

बोधिसत्त्व से बुद्ध

(ई. पू. ५६३ – ५२८)

★

वर्तमान युग में संसार की कई भाषाओं में बुद्ध–चरित्र प्राप्य है। अंग्रेजी में तो दर्जनों मिलेंगे। सिंहल में भी कमी नहीं है। हिन्दी के अतिरिक्त भारत की अन्य कई भाषाओं में भी छोटेमोटे जीवन चरित्र लिखे ही जा चुके हैं। हिन्दी में तो राहुलजी की प्रसिद्ध 'बुद्धचर्या' को छोड़ बुद्ध के जीवन पर कई काव्य ग्रंथ और नाटक भी लिखे गये हैं। प्राचीन काल में रचित अश्वघोष कृत संस्कृत 'बुद्धचरित' विशेष उल्लेखनीय है। 'ललित विस्तर' में भी बुद्ध की जीवनी सविस्तर दी गई है। इसीसे मिलती जुलती कथा 'जातक' की निदान कथा में है। उक्त कथाओं से त्रिपिटक में बुद्ध चरित्र संबंधी जो जानकारी प्राप्य है उसका बिलकुल मेल नहीं बैठता।

बोधिसत्त्व के 'कुल' एवं बाल्यावस्था की जानकारी त्रिपिटक में बहुत कम पाई जाती है। प्रसंगानुसार उपदिष्ट सूत्रों से कुछ झलक अवश्य मिलती है। अट्ठकथाओं के वक्तव्य और त्रिपिटक के इन उल्लेखों में कहीं कहीं एकदम मेल नहीं है।[१]

मज्झिमनिकाय के चुल्लदुक्खक्खंध[२] सूत्र में गौतम के कुटुम्ब के विषय में उल्लेख है। जातक–निदान और अंगुत्तर – निकाय की मणोरथपूरणी नामक अट्ठकथा में काफी विरोध है। दोनों में से एक तो निश्चित रूप से बुद्धघोषा-चार्य की कृति है। दोनों को आचार्य बुद्धघोष की ही कृति मान कर आचार्य धर्मानंद कोसंबी ने लिखा है – "एक ही बुद्धघोषाचार्य की लिखी हुई इन अट्ठकथाओं में इस प्रकार का विरोध दिखाई देता है। जातक–निदान कथा के अनुसार आनंद अमितोदन का पुत्र है और अंगुत्तर – निकाय की अट्ठकथा में अनिरूद्ध को अमितोदन का पुत्र बताया गया है। अतः ऐसी शंका होती है कि कहीं शुक्लोदन नाम भी काल्पनिक ही न हो।"[३]

एक नाम के इधर उधर हो जाने से दोनों ग्रंथों से प्राप्य जानकारी को ही गलत ठहराना ठीक नहीं जंचता। हो सकता है कि इस में अट्ठकथाचार्यों

की कोई गलती न हो। बाद के लिपिकों के प्रमाद के कारण कुछ इधर का उधर हो गया हो।

सिद्धार्थ के जन्म से बुद्धत्त्व प्राप्ति के समय तक उन्हें 'बोधिसत्त्व' की संज्ञा बहुत प्राचीन काल से दी गई जान पड़ती है। पालि–वाङ्मय में सबसे पुरातन 'सुत्तनिपात' है। उस में कहा गया है–

सो बोधिसत्तो रतनवरो अतुल्यो।
मनुस्सलोके हितसुखाय जातो ।।
सक्या नं गामे जनपदे लुम्बिनेय्ये ।।।

अर्थात, श्रेष्ठ रत्न जैसे उस बोधिसत्त्वनें लुम्बिनी जनपद में शाक्यों के गांव में मानवों के हित के लिए, सुख के लिए जन्म लिया।

प्रारंभ में शायद गौतम जन्म से लेकर सम्बोधि ज्ञान प्राप्ति होने तक यह विशेषण उनके साथ जोड दिया होगा। फिर होते होते यह विचार रूढ हो गया होगा कि उन्होंने इस जन्म से पहले भी दूसरे अनेक जन्म लिये थे। इसी प्रकार वे 'बोधिसत्त्व' कहलाये गये। सिद्धार्थ या गौतम के पूर्व जन्मों की कथाओं का संग्रह 'जातक' नाम से प्रसिद्ध है। शायद सबसे पहले महायान आचार्योंने इसकी कल्पना की और बाद में सम्भवत: बुद्धघोषाचार्यने ही अपनी 'जातक अट्ठकथा' में इसका उपयोग किया।

मज्झिमनिकाय में उपरिपण्णासक के अच्छरियधम्म सुत्त में बोधिसत्त्व की उत्पत्ति का उल्लेख है। उसके अनुसार गौतम ने दस मास तक महामाया देवी की कोख में रह कर जन्म ग्रहण किया। जन्म के सातवे दिन उनकी माता का देहांत हुआ।

सुत्तनिपात में 'बोधिसत्त्व' का जन्म लुम्बिनी जनपद में हुआ बताया है। आज भी इस स्थान को 'लुंबिन्देवी' ही कहा जाता है। वहां पर जमीन में गडी हुई अशोक की लाट (शिला स्तंभ) मिली है। उस पर के ब्राम्ही लेख में 'लुम्बिनि गामे उबलिके कते' वाक्य है। इससे यह पूरी तरह सिद्ध होता है कि बोधिसत्त्व का जन्म लुम्बिनी ग्राम में हुआ था।

मज्झिमनिकाय के 'चुल्लदुक्खंक्खधक' सुत्त में कहा गया है कि महानाम शाक्य कपिलवस्तु का रहने वाला था। परंतु शुद्धोदन शाक्य को भी वहीं का निवासी बताया है।[४] अत: यह मानना पड़ेगा कि शुद्धोदन कभी कभी लुम्बिनी ग्राम की जमींदारी में रहता था और वहीं 'बोधिसत्त्व' का जन्म हुआ था।[५]

भदन्त आनन्द कौसल्यायन कहते हैं,– "सिद्धार्थ, सभी स्कूली किताबों में लिखा रहता है कि शुद्धोदन महाराजा का पुत्र था। 'महाराजा' क्या, मूल त्रिपिटक में तो शुद्धोदन के लिये 'राजा' शब्द भी नहीं सा ही आया है।

शुद्धोदन कोई राजा रहा भी होगा तो भी वह आज के अर्थों में 'राजा' नहीं रहा होगा। हां अच्छी तरह खाता पीता एक धनाढ्य जमींदार अवश्य रहा होगा।"[६] इससे भी इस बातका समर्थन होता है कि शुद्धोदन राजा नहीं था, अपितु कुछ और ही था। आचार्य कोसंबी इसी मत को मानते हैं।

मज्झिमनिकाय के उक्त सुत्त के अनुसार यह तो सिद्ध है कि महामाया देवी से सिद्धार्थ का जन्म हुआ था, परंतु इससे शुद्धोदन का विवाह किस उम्र में हुआ और माया देवी ने बोधिसत्त्व को किस उम्र में जन्म दिया, इन बातों का पता नहीं चलता। अपदान ग्रंथों में महाप्रजापति गौतमी का एक अपदान है। उस में वह कहती है–

पश्चिमे च भवेदानि जाता देवदहे पुरे।
पिता अंजन सक्को मे माता मम सुलक्खणा।
ततो कपिलवत्थुस्मि सुद्धोदन घरं गता।

अर्थात, और इस अंतिम जन्म में मैंने देवदह नगर में जन्म ग्रहण किया। मेरा पिता था अंजन शाक्य और मेरी माता सुलक्षणा। फिर सयानी होनेपर मैं कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के घर गई, यानी शुद्धोदन से मेरा विवाह हुआ।

यहाँ महाप्रजापति गौतमी के अंजन शाक्य एवं सुलक्षणा की कन्या होने की बात स्पष्ट है। तब यही मानना युक्ति संगत है कि महाप्रजापति गौतमी और उसकी बड़ी बहन महामाया देवी अंजन शाक्य की कन्यायें थी और दोनों का विवाह शुद्धोदन के साथ हुआ था।

आचार्य धर्मानंद कोसंबी अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं–" माया देवी के देहांत के बाद बोधिसत्त्व को होने वाले कष्टों का ख्याल कर के शुद्धोदन ने माया देवी की छोटी बहन से विवाह कर लिया हो, यह विशेष सम्भव प्रतीत होता है।"

माया देवी के देहांत के तुरंत बाद शुद्धोदन ने प्रजापति गौतमी से, केवल बोधिसत्त्व के लालन पालन के लिये विवाह किया होगा यह बात नहीं जंचती। बोधिसत्त्व के देखने के लिए आया भी रखी जा सकती थी। जहाँ तक बोधिसत्त्व को दूध पिलाने का प्रश्न है, बोधिसत्त्व को दूध पिलाने के लिए स्वयं गौतमी का किसी न किसी संतान की माता होना आवश्यक है। पालि वाङ्मय के के अनुसार माया देवी के देहांत कें समय गौतमी को नंद नाम का शिशु था। बोधिसत्त्व को दूध पिलानेके लिये उसने नंद आया को सौंप दिया था।

विवाह के काफी समय बाद जब शुद्धोदन को माया से संतान की कोई आशा नहीं रही होगी तभी उसने उसकीं छोटी बहन गौतमी से विवाह किया होगा। इसके बाद दोनों को एक साथ पुत्र लाभ हो गया होगा। इसी लिए यही मान्यता अधिक मेल खाती है।

'जातक' की निदान-कथा में कहा गया है कि माया ने खड़े खड़े 'बोधिसत्त्व' को शाल वृक्ष के नीचे जन्म दिया था किन्तु 'ललितविस्तर' का कहना है कि गौतम का जन्म प्लक्ष वृक्ष के नीचे हुआ था। दोनों कथनों में इतनी समानता जरूर है कि 'बोधिसत्त्व' की माता ने खड़ी अवस्था ही में बोधिसत्त्व को जन्म दिया था।[८]

बोधिसत्त्व के जन्म अनंतर शुद्धोदन ने बड़े बड़े पण्डितों से उनका भविष्य पूछा। पण्डितों ने उनके बत्तीस लक्षण देख कर यह भविष्य वाणी की कि या तो यह बालक चक्रवर्ती राजा होगा या फिर 'बुद्ध' होगा। इसी तरह के विस्तृत कथन जातक निदान-कथा में, ललितविस्तर और अश्वघोष के 'बुद्ध-चरित' काव्य में आये हैं। इस से यह स्पष्ट होता कि उन दिनों भी लक्षणों पर लोगों का विश्वास रहा होगा। त्रिपिटक वाङमय में अनेक स्थानों पर इनका वर्णन पाया जाता है। एक बार पोक्खरसाती ब्राम्हण ने तरुण अम्बट्ठ को बुद्ध के शरीर के लक्षण देखने को भेजा था।[९]

सुत्तनिपात की नालक सुत्त-वस्तु कथा के अनुसार देवों को उत्सव मनाते देख असित ऋषि उनसे इसका कारण पूछते हैं। देवता गण उत्तर देते हैं- "मित्र शुद्धोदन राजा को पुत्र लाभ हुआ है। वह 'बुद्ध' होगा और 'धर्मचक्र' प्रवर्तित करेगा। हमे उसकी 'बुद्ध-लीला' देखने को तथा उनका 'धर्म' सुनने को मिलेगा-इस कारण से हम प्रसन्न-चित्त है।[१०]

यह जान कर असित ऋषि बोधिसत्त्व को देखने जाते हैं। वे बालक को दोनों हाथों से ग्रहण करते हैं। असित ऋषि भी बोधिसत्व को भावी 'बुद्ध' ही घोषित करते हैं। उस समय स्वयं जीवित न रह सकने के लिए अफसोस प्रकट करते हुए बोधिसत्त्व के बुद्ध होने पर अपने भानजे बालक को बुद्ध के पास प्रव्रजित होने का आदेश दे चले जाते हैं। यहाँ असित ने बालक को नमस्कार किया अथवा बालक के पैर अपने आप ही असित के सिर पर जा लगे, यह कथा यहाँ कहीं नहीं आती किन्तु यह कथा जातक निदान कथा में विस्तार पूर्वक दी गई है। इस से स्पष्ट होता है कि बाद में पालि अट्ठकथाचार्यों ने भी महायान-आचार्यों की ही तरह बुद्ध के धर्म को ही नहीं, उनके शरीर को भी लोकोत्तर बना दिया।

बोधिसत्त्व के नाम और गोत्र के संबंध में भी विद्वानों का एक मत नहीं है। 'अमर कोश' में बोधिसत्त्व के छः नाम दिये गए हैं। उन में से शाक्यसिंह, शौद्दोदनी और मायादेवीसुत ये तीन विशेषण हैं और अर्कबंधू उनके गोत्र का नाम है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि सर्वार्थसिद्ध और गौतम, इन में उन का असली एक नाम कौनसा था? या वे दोनों ही उनके अपने नाम थे?[११]

पालि वाङमय में बोधिसत्त्व का नाम 'सर्वार्थसिद्ध' होने का उल्लेख कहीं

नहीं मिलता। केवल निदान कथा में सिद्धत्थ (सिद्धार्थ) नाम आया है। ऐसा लगता है कि वह भी ललितविस्तर से ही लिया गया है। ललितविस्तर में है–

अस्य ही जातामात्रेण मम सर्वार्था: संसिद्धाः यन्वरमस्य सर्वार्थसिद्ध इति नाम कुर्याम् ततो राजा बोधिसत्त्व महता सत्कारेण सत्कृत्य सर्वार्थसिद्धयो यं कुमारो नाम्ना भवतु इति नामस्याकार्षात।

कोसंबीजी 'गौतम' नाम को ही बोधिसत्त्व का वास्तविक नाम बताते हैं। अपने मत की पुष्टि में वे थेरी गाथा में आई महाप्रजापति गौतमी द्वारा कही गई गाथाओं को उद्धृत करते हैं।

बहूनं वत अत्याय माया जनयि गौतमं।
व्याधिमरणतुन्नानं दुक्खक्खंध व्यपानुदी"ति॥

अर्थात्, "बहुतों के कल्याण के लिए माया ने गौतम को जन्म दिया। व्याधि और पीड़ित जनों की दुःख–राशी को उसने नष्ट किया।"

महापदान सुत्त इस मत के सर्वथा विरुद्ध है। वहाँ बुद्ध को 'गौतमो गोत्तेन' कहा गया है। इसी प्रकार अपदान में भी अनेक स्थानों पर 'गोतमो नाम नामेन' और 'गोतमो नाम गोत्तेन' ऐसे परस्पर विरोधी उल्लेख मिलते हैं। इनसे लगता है कि या तो बोधिसत्त्व का नाम और गोत्र एक ही था, या आगे चल के गोत्र ही नाम के रूप में प्रचलित हो गया।

यह भी सम्भव है कि उनका व्यक्तिगत नाम सिद्धार्थ ही रहा हो और गोत्र गौतम। जैसे आजकल सरनेम लगाने की प्रथा है। इसी प्रकार सिद्धार्थ के साथ गौतम जोड दिया गया हो। इस प्रकार सिद्धार्थ गौतम नाम प्रचलित हो गया हो और बाद में सिद्धार्थ नाम गौण हो जाने से ही गौतम ने ही प्रधान पद ग्रहण कर लिया हो। या उच्चारण की सुविधा के कारण बोधिसत्त्व को घर में गौतम नाम से पुकारते रहे हो। यह भी सम्भव है कि प्रजापति गौतमी को यही नाम अधिक प्रिय रहा हो और इसी लिए उसने अपनी थेरी गाथा में गौतम नाम का उल्लेख किया होगा।

मज्झिमनिकाय के महासच्चक सुत्त में वर्णन मिलता है कि बोधिसत्त्व ने बचपन में एक वृक्ष के नीचे आनापान सति प्रथम ध्यान की ध्यानभावना की थी। जातक की निदान–कथा में इस घटना का वर्णन बड़े विस्तार से बढा चढा कर किया है। उस में कहा गया है, "बोधिसत्त्व को घेर कर बैठी धाइयाँ, राजकीय तमाशा देखने के लिये कनातके भीतर से बाहर चली आई। बोधिसत्त्व इधर उधर किसी को न देख, जल्दी से उठ, श्वास प्रवास पर ध्यान दे, प्रथम ध्यान प्राप्त हो गये। धाइयों ने खाद्य भोज्य में लगे रह कर कुछ देर कर दी। सभी वृक्षों की छाया घूम गई, लेकिन बोधिवृक्ष वाले वृक्ष की छाया गोल ही खड़ी रही।" [१२]

इस से यही कहना पड़ता है कि बाद में बोधिसत्त्व के जीवन की प्रत्येक घटना में अलौकिक बातों का समावेश हुआ, जिस से बुद्ध का सीधा सरल जीवन जटिल समस्या बन गया।

"दी लाईट ऑफ एसिया" नामक अंग्रेजी काव्य में हंस की कथा आती है, जिस में बालक बोधिसत्त्व घायल हंस को उठा कर उसकी सेवा करता है। आधुनिक काव्य और सभी छोटे बड़े बुद्ध चरित्रों पर इस कथा का प्रभाव पड़ा है और चित्र कला पर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। किन्तु यह कथा न पालि वाङमय में है और न महायान ग्रंथों में ही कहीं दिखाई देती है। जान पड़ता है कि यह कवि की कल्पना मात्र है।

अंगुत्तरनिकाय में भगवान् बुद्ध अपनी बोधिसत्त्व-अवस्था का इस प्रकार वर्णन करते हैं, "भिक्षुओ ! मैं सुकुमार था, परम सुकुमार, अत्यत सुकुमार,। भिक्षुओ ! मेरे पिता के घर पुष्करणियाँ बनी थी...।" इसी प्रकार अपने वस्त्रों का और श्वेत छत्र आदि का वर्णन कर आगे कहते हैं, "भिक्षुओ ! उस समय मेरे तीन प्रासाद थे, एक हेमन्त ऋतु के लिए। दुसरा ग्रीष्म ऋतु के लिए तथा तीसरा वर्षा ऋतु के लिए। भिक्षुओ ! मैं वर्षा के चारों महिने वर्षा के प्रासाद से नीचे नहीं उतरता था। उस समय मैं तुरिया–वादन करने वाली स्त्रियों से घिरा रहता था। भिक्षुओ, जैसे दूसरे घरों में दासों तथा नौकरों को बिलं और कणजक भात दिया जाता था, वैसे ही भिक्षुओ ! मेरे पिता के घर में दासों तथा नौकरचाकरों को मांस तथा शाली धान का भात दिया जाता था।"[१३]

इस वर्णन से यह सिद्ध होता है कि बोधिसत्त्व के तीन प्रासाद थे। उनकी सुख सुविधा की अच्छी तरह व्यवस्था की गई थी। इससे ज्ञात होता है कि उनके पिता पर्याप्त ऐश्वर्य संपन्न थे।

भगवान बुद्ध आगे कहते हैं, "भिक्षुओ ! उस समय इस प्रकार का ऐश्वर्य भोगते हुए तथा इस प्रकार कि सुकुमारता लिए हुये मेरे मन में यह हुआ, अज्ञानी सामान्य जब स्वयं जरा को प्राप्त होने वाला हो कर, स्वयं जरा के आधीन हो कर, किसी दूसरे बूढे को देख कर अपनी मर्यादा भूल कष्ट पाता है, लज्जित होता है तथा घृणा करता है। मैं तो बुढ़ापे को प्राप्त होने वाला हूँ, बुढ़ापे के आधीन हूँ। यदि मैं स्वयं बुढापे को प्राप्त होने वाला हो कर, स्वयं बुढ़पे के आधीन हो कर दूसरे बुढे को देखकर कष्ट पांवू, लज्जित होऊं तथा घृणा करूं तो यह मेरे योग्य न होगा। भिक्षुओ ! इस प्रकार का विचार करते करते मेरे मन में यौवन के प्रति जो यौन–मद था वह सब जाता रहा।"[१४] इस प्रकार व्याधि और मरण का भी वर्णन करते हैं।

इस वर्णन में बीमार, बूढा, मृत शरीर और संन्यासी देखकर बैरागी

बनने की बात कहीं नहीं आती। जातक–निदान कथा में इसका वर्णन सविस्तर मिलता है। वहाँ कहा गया है कि जब बोधिसत्त्व रथारूढ हो उद्यान विहार के लिए जा रहे थे, तो देवताओं ने बुद्धत्व प्राप्ति का समय जान देव–पुत्रों द्वारा उक्त दृश्यों का अभिनय करवाया था। [१५]

बोधिसत्त्व की गृहत्याग की जातक निदान में आई कथा की अपेक्षा अंगुत्तरनिकाय का वर्णन अधिक विश्वसनीय है। संभवत: अट्ठकथाचार्यों ने वह बूढे, रोगी, मृत...को देखकर गृहत्याग करने की कथा ललितविस्तर से अपनाई है। प्रश्न पैदा होता है कि ललितविस्तर में यह कथा कहाँ से आई ? अंगुत्तरनिकाय में आया हुआ उक्त वर्णन ही इस कथा के निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ होगा।

ललितविस्तर और निदान–अट्ठकथा में आई हुई बोधिसत्त्व के गृहत्याग की कथा सर्वथा ग्राह्य नहीं है। यदि बोधिसत्त्व पिता के साथ या अकेले खेत में जाकर काम करते थे और आलारकालाम के आश्रम में जा उसका दर्शन सीखते थे तो फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि उन्होंने किसी बूढे, व्याधिग्रस्त या मृत व्यक्ति को कभी नहीं देखा हो ? उनके घर में स्वयं उनके पिता ही वृद्ध थे। हो सकता है यह अद्भुत कथा उनके जीवन चरित्र में महायान सूत्रों से आई हो। जातक अट्ठकथाकार कहते हैं, "महापदाने आगतनयेन पुच्छित्वा,' अर्थात महापदान सुत्त में आई हुई कथा के अनुसार प्रश्न पूछ कर, यह सम्भव नहीं कि दीर्घनिकायका महापदान [१६] सुत्त उत्तरकालीन समावेश हो। तो फिर प्रश्न उठता है कि उनके गृहत्याग का क्या कारण था ? इस का उत्तर स्वयं भगवान् बुद्ध अत्तदण्ड सुत्त में [१७] इस प्रकार देते हैं –

"शस्त्र धारण करना भयानक लगा। उससे यह जनता कैसे भडकती है, देखा। मुझ मे संवेग, वैराग्य कैसे उत्पन्न हुआ, यह मैं बताता हूँ। अपर्याप्त पानी में जैसे मछलियाँ छटपटाती हैं वैसे ही एक दूसरे से विरोध करके छटपटाने वाली प्रजा को बेबस देख कर मेरे अंत:करण में भय उत्पन्न हुआ। चारो ओर का जगत् असार दिखाई देने लगा, सब दिशायें कांप रही है, ऐसा लगा और उस में आश्रय का स्थान खोजने पर निर्भय स्थान नहीं मिला, क्योंकि अंत तक सारी जनता को परस्पर विरुद्ध हुये देख कर मेरा जी ऊब गया।"

जातक अट्ठकथा में अनेक स्थानों पर पाया जाता है कि शाक्यों और कोलियों में रोहिणी नदीं के पानी के लिये झगड़ा हुआ। उस समय भगवान् ने इस सुत्त का उपदेश दिया था। परंतु यहाँ तो उनको वैराग्य कैसे हुआ इसका वर्णन कर रहे हैं। इस लिये बुद्ध ने इस सुत्त का उपदेश वहाँ दिया होगा यह संभव नहीं है। [१८]

सुत्तनिपात के पब्बज्ज सुत्त में एक वर्णन मिलता है, "गृहस्थाश्रम तो

अड़चनों और कूडे कचरों की जगह है तथा प्रव्रज्या खुली स्वच्छ हवा है। यह जान कर मैं प्रव्रजित हुआ।" [१९] इस कथन का आधार मज्झिमनिकाय के महासच्चक [२०] सुत्त में भी मिलता है परंतु अरियपरियसन सुत्त [२१] में इस से थोड़ा भिन्न कारण दिया गया हैं किन्तु उपर्युक्त कथन का विरोध नहीं करता है।

अरियपरियसन सुत्त में भगवान् बुद्ध अपने गृहत्याग के समय की घटना का वर्णन इस प्रकार करते हैं, "सो खो अहं भिक्खवे अपरे न दहरो व समानो सुसु काल केंसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा अकामकानं मातापितुन्नं अस्सुमुखानं रुदंतानं केसमस्सु ओहरेत्वा कासावानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिं।"

अर्थात्, "हे भिक्षुओं! ऐसा विचार करते हुए थोडे समय के बाद, यद्यपि मैं उस समय तरुण था, मेरा एक भी बाल पका नहीं था, मैं ठीक जवानी में था और मेरे माँ-बाप मुझे आज्ञा नहीं दे रहे थे, आँखों से बहने वाले अश्रु-प्रवाह से उनके मुख भींग गये थे, वे लगातार रो रहे थे, फिर भी मैं शिरोमुण्डन करके काषाय वस्त्रों से देह ढाँपकर घर से बाहर निकला। अर्थात् मैं प्रव्रजित हो गया!"

यही उदाहरण ठीक इन्हीं शब्दों में महासच्चक सुत्त में भी मिलता है। उस से यह कहना उचित नहीं जान पडता है कि बोधिसत्त्व छन्न को साथ ले आधी रात में चुपके से घर से भाग गये थे। उपर्युक्त कथन के अनुसार बोधिसत्त्व को प्रव्रज्या के अवसर पर उनकी माता गौतमी तथा पिता उपस्थित थे।

आचार्य धर्मानंद कोसंबी बोधिसत्व की प्रव्रज्या के तीन कारण बताते हैं, १ अपने आप्तों द्वारा एक दूसरे से लडने के लिये शस्त्र धारण किये जाने से उन्हें भय लगा, २ घर अडचनों और कूडेकचरों की जगह है ऐसा लगा और ३ ऐसा लगा कि स्वयं जन्म, जरा, मरण, व्याधि और शोक से संबंध होते हुये उसी प्रकार की वस्तुओं पर आसक्त हो कर नहीं रहना चाहिए। [२२]

इन कारणों को यथार्थ कारण मान कर कोसंबीजी ने मराठी में 'बोधिसत्त्व' नामक एक नाटक की रचना की। बाद में बाबासाहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपने 'दी बुद्ध एण्ड हिज धम्म' में इसी कथा को अपना लिया है। इस कथा में सिद्धार्थ गौतम का ही नहीं बल्कि यसोधरा का चरित्र भी महान बताया है।

अट्ठकथाचार्यों ने यसोधरा को एक अनजान अबला नारी के सिवा और कुछ नहीं रहने दिया है। कोसंबीजी ने अपने नाटक में यसोधरा को महान्, उदार, साहसी पतिव्रता, वीर पत्नी का रूप दिया है जो उसके अनुरूप था।

यदि आज बोधिसत्त्व की ये दोनों कथायें-एक सूत्रानुमोदित तथा दूसरी

अट्ठकथा सम्मत कथा विज्ञ पाठकों का विचारणीय विषय बने, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूत्रानुमोदित कथा ही पाठकों को ऐतिहासिक सत्य के अधिक समीप जान पड़ेगी।

---

१. भगवान् बुद्ध – आचार्य धर्मानंद कोसंबी।
२. सुत्त संख्या १४ ।
३. भगवान बुद्ध पृ. ८१ । धर्मानंद कोसंबी
४, राहुल वत्थु–महावग्ग ।
५. भगवान बुद्ध पृ. ८१ । धर्मानंद कोसंबी
६. तथागत, पृ. ३–४ ।
७. भगवान बुद्ध, पृ. ९८ ।
८. भगवान बुद्ध ।
९. दीघनिकाय–अम्बट्ठ सुत्त ।
१०. जातक निदान कथा में भी यही वर्णन मिलता है ।
११. भगवान बुद्ध पृ. १०१ ।
१२. जातक–हिन्दी अनुवाद–पृ. १२६. भदंत आनंद कौसल्यायन ।
१३. जातक प्रथम खण्ड–हिन्दी अनुवाद पृ. १४८ भदंत आनंद कौसल्यायन ।
१४. वहीं
१५. वहीं पृ. १२८ ।
१६. महावग्गो २ सुत्त संख्या– १ ।
१७ सुत्तनिपात अट्ठकवग्गो–सुत्त संख्या १५ ।
१८. भगवान बुद्ध ।
१९. महावग्गो–सुत्त संख्या १ ।
२०. सुत्त संख्या ३६ ।
२१. मज्झिमनिकाय ।
२२. भगवान बुद्ध ।

● ●

★

सामुद्रिक शास्त्रज्ञ और प्रथम शिष्य

★

ज्ञानी कौण्डिन्य

(ई. पू. ५२८)

★

यद्यपि ज्ञानी कौण्डिन्य उतने प्रसिद्ध नहीं है जितने प्रसिद्ध आनंद और सारिपुत्र–मोद्‌गल्यायन आदि भगवान् के शिष्य थे। इस के बावजूद बौद्ध धर्म के इतिहास में उनका अद्वितीय स्थान है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। ज्ञानी कौण्डिन्य ही भगवान् बुद्ध के प्रथम शिष्य थे जिन्हों ने उनका मध्यम मार्ग सर्वप्रथम समझा था। वे पहले भिक्षु थे जो भगवान् द्वारा उपसम्पन्न कराये गये थे।

कौण्डिन्य का जन्म कपिलवस्तु के समीप द्रोणवस्तु नामक ब्राह्मण ग्राम में हुआ था। उनके पिता महासार [1] ब्राह्मण बहुत धनी थे। नामकरण के अवसर पर गोत्र के नाम पर उनका नाम कौण्डिन्य रखा गया।

उस युग की शिक्षा प्रणाली के अनुसार उन्हों ने तीनों वेदों का अध्ययन किया। इस के साथ साथ उन्हों नें सामुद्रिक विद्या का भी गम्भिर अभ्यास किया था। विशेषतः मुख–सामुद्रिक शास्त्र के वे बेजोड पण्डित माने जाते थे।

जिस समय कपिलवस्तु नगर में राजा शुद्धोदन की रानी महामाया देवी को पुत्र लाभ हुआ तो राजा ने नवजात शिशु का भविष्य जानने के लिए खास–तौर पर आठ ब्राह्मणों को निमंत्रित किया था। उन में कौण्डिन्य तरुण थे तथा सबसे कम उम्र के थे। अन्य सातों के नाम थे–राम, ध्वज, लक्षण, मंत्री, भोज और सुयाम। सातों पण्डितों ने सिद्धार्थ का दो तर्फा भविष्य बताया। उन्हों ने दो उंगलियाँ ऊपर उठा कर कहा था "यदि कुमार गृहस्थ जीवन व्यतित करेगा तो वह चक्रवर्ती राजा होगा और अगर प्रव्रजित होगा तो बुद्ध होगा।"

तरुण कौण्डिन्य ने केवल एक ही उंगली ऊपर उठाकर एक ही प्रकार की भविष्यवाणी कही। उन्हों ने दृढ़ निश्चय से कहा, "बालक के गृहस्थ बने रहने का कोई भी चिन्ह नहीं है। उसके अंग लक्षण स्पष्ट रूपसे कहते हैं कि वह निश्चित ही बुद्ध होगा। बुद्ध होने के लिये कोई बाधक कारण नहीं है।"

अपने से कम उम्र और अल्प अनुभव वाले तरुण कौण्डिन्य की बात शेष

ब्राह्मणों को माननी पड़ी क्यों कि वे जानते थे और मानते थे कि उनकी अपेक्षा कौण्डिन्य का सामुद्रिकशास्त्र का ज्ञान अधिक है ।

सिद्धार्थ कुमार के बुद्ध होने में कौण्डिन्य को अल्प मात्र भी संदेह नहीं था । इसी कारण उन्हों ने गृह त्याग का निश्चय किया । भावी बुद्ध को स्मरण कर वे परिव्राजक हो गये । वे कपिलवस्तु से क्रमशः उरुवेला पहुंचे । वहाँ का रमणीय भू-भाग उन को बड़ा ही सुहाना लगा । उस से अधिक योग्य एकांत स्थान उन्हें दूसरा दिखाई नहीं दिया । वे वही सिद्धार्थ कुमार के अभिनिष्क्रमण की प्रतीक्षा करते रहे । [२]

जिस दिन सब त्याग कर सिद्धार्थ कुमारने महाभिनिष्क्रमण किया तो कौण्डिन्य की भविष्य वाणी अर्द्ध-सत्य सिद्ध हुई । कुमारके गृहत्याग का समाचार मिलने पर कौण्डिन्य उन सातों ब्राह्मण ज्योतिषियोंके पुत्रों के पास गये । कुमार का भविष्य कहने वाले सातों ब्राह्मण कभी के चल बसे थे । कौण्डिन्य ने उनके पुत्रों से निवेदन किया, "अब सिद्धार्थ कुमार प्रव्रजित हो गये हैं । वे निःसँशय बुद्ध होंगे । यदि तुम्हारे पिता जीवित होते, तो वे आज घर छोड प्रव्रजित हुये होते । यदि तुम चाहते हो तो आओ उस महापुरुष के पिछे प्रव्रजित होओं ।" [३]

सातों पुत्रों की एक राय नहीं थी । तीन लड़कों ने घर छोडने से इनकार किया । शेष चार प्रव्रजित हो गये । कौण्डिन्य उन चारों के मार्ग-दर्शक बने । आगे चल कर वे पाँचो पंचवर्गीय भिक्षुओं के नाम से प्रसिद्ध हुये । [४]

यत्र तत्र भ्रमण करने के पश्चात बोधिसत्त्व ने उरुवेला के रमणीय स्थान को ही तपस्या की भूमि चूना । कौण्डिन्य आदि पांचों परिव्राजक भी उनकी खोज में वहीं पहुंचे । 'अब बुद्ध होंगे, अब बुद्ध होंगे' सोच पांचों छः वर्ष तक बोधिसत्त्व की सेवा शुश्रूसा करते रहे ।

साधना करते हुये सिद्धार्थ गौतम ने क्रमशः आहार कम करते करते बाद में एकदम आहार छोड़ दिया । निराहार रहने के कारण वे बहुत दुर्बल हो गये । उनका कनक वर्ण शरीर काला और कृश हो गया । महापुरुष के बत्तीस लक्षण उनके शरीर से गुप्त हो गये । श्वास रहित ध्यान करते समय एक बार उन्हें तीव्र पीड़ा हुई । वे टहलने के चबूतरे से गिर पड़े । होश आनें पर उन्होंने सोचा, 'यह दुष्कर तपस्या संबोधि-प्राप्त करने का मार्ग नहीं हैं ।" भिक्षाटन कर वे धीरे धीरे आहार ग्रहण करने लगे । कुछ ही दिनों में उनका शरीर फिर पूर्ववत सुवर्ण-वर्ण हो गया ।

जिस आशा से पंच-वर्गीय उनकी सेवा कर रहे थे, अब उन्हें उसका जरा भी भरोसा नहीं रहा । उनका सारा श्रम व्यर्थ सा लगने लगा, 'छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या करने पर भी यह बुद्ध नहीं हो सका, तो अब ग्रामादि में भिक्षा

मांग, स्थूल आहार ग्रहण करने पर क्या होगा ?" 'यह लालची है, तपके मार्ग से भ्रष्ट हो गया' सोच महापुरुष से निराश हो कर अपना अपना सामान उठा कर ऋषिपत्तन[१] चले गये ।

एक उंगली ऊपर उठा कर 'सिद्धार्थ कुमार निश्चित रूप से बुद्ध होगा' कहने वाले स्वयं कौण्डिन्य ही थे । कौण्डिन्यका भी बोधिसत्त्व को छोड ऋषि-पतन चले जाने से यह सिद्ध होता है कि उनका अपनी भविष्यवाणी से विश्वास उड़ गया था । इसी कारण वे अपने मित्रों के साथ. उनसे निराश हो चले गये थे । यदि अब भी उन्हें अपनी भविष्यवाणी पर विश्वास होता तो वे उन्हें छोड़ कभी नहीं जाते ।

ऋषिपत्तन जाकर कौण्डिन्य आदि पांचों पर क्या बीती होगी इसकी कल्पना करना कठिन है । उस संबंध में विशेष जानकारी नहीं मिलती किन्तु यह अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि छः वर्ष का परिश्रम उन्हें व्यर्थ–सा लगा होगा और इस संबंध में उन्हें बेहद पश्चात्ताप हुआ होगा ।

सम्बोधि प्राप्ति के अनंतर भगवान बुद्ध को अन्त में सेवाभावी पंचवर्गियों का ध्यान आया । प्रथम धर्मोपदेश के लिये उन्हें उनसे अधिक उपयुक्त अन्य कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ । उन्हें प्रथमोपदेश देने भगवान ऋषिपत्तन पधारें ।

भगवान को दूरसे ही आते देख पांचों ने आपस में मंत्रणा की, "मित्रों ! वह साधना भ्रष्ट श्रमण गौतम चला आ रहा है । उसे अभिवादन नहीं करना चाहिए, न उसके स्वागत में खड़े होना चाहिए, और न ही उसका पात्र चीवर लेना चाहिए । एक आसन रख देंगे, इच्छा हो तो बैठेगा । "

किन्तु जैसे जैसे भगवान उनके समीप पहुँच रहे थे वैसे वैसे वे पांचों अपने निश्चय से हट रहे थे । भगवान का सत्कार न करने का उनका प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुआ । उन्होंने सर्व प्रकार से तथागत का स्वागत किया ।

जब उन्होंने भगवान को 'आयुष्मान' शब्द से संबोधित किया तो भगवान ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! तथागत को नाम से या 'आयुष्मान' शब्द से मत पुकारो । तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध हैं ।

पंचवर्गीय–भिक्षुओं ने भगवान से निवेदन किया, "आयुष्मान गौतम उस साधना में, उस धारणा में, उस दुष्कर तपस्या में भी तुम आर्यों के ज्ञान–दर्शन को, पराकाष्टा को, विशेषता को, उत्तर–मनुष्य धर्म को नहीं पा सके, फिर अब साधना–भ्रष्ट, तुम उसे क्या पाओंगे । "

अन्त में भगवान बुद्ध ने प्रतिपादन किया, "भिक्षुओं इस से पहले भी कभी मैंने तुम से इस प्रकार कहा है ? "

'नहीं भन्ते ! ' सब ने भगवान को 'भन्ते' ! कह संबोधन किया ।

अन्त में कौण्डिन्य आदि पांचों ने भगवान की बात स्वीकार कर ली।[६]

इन पंचवर्गीय भिक्षुओं को भगवान बुद्ध ने जो उपदेश दिया वह धर्मचक्रप्रवर्तन सूत्र के नाम से पालि–साहित्य में प्रसिद्ध है।

भगवान ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को संबोधित कर कहा,

'भिक्षुओं ! इन दो अन्तों, अतियों का प्रव्रजितों द्वारा सेवन नहीं किया जाना चाहिए। कौनसे दो ? (१) यह जो हीन, ग्राम्य, पृथक् जनों, अज्ञ–मनुष्यों के योग्य, अनार्य सेवित, अनर्थों से युक्त काम–भोग में लिप्त रहना है और (२) यह जो दुःखमय, अनार्य सेवित, अनर्थों से युक्त अपने शरीर को व्यर्थ पीड़ा पहुंचाना है। भिक्षुओं इन दोनों ही अन्तों से दूर बने रह कर, तथागत ने मध्यम मार्ग खोज निकाला है, जो कि आँख देनेवाला है, ज्ञान देने वाला है, शान्ति के लिए है, अभिज्ञा के लिए है, सम्बोधि परिपूर्ण ज्ञान के लिए है, निर्वाण के लिए है। कौनसा है वह मध्यम मार्ग, जो तथागत ने खोज निकाला हैं ? यही आर्य अष्टांगिक–मार्ग है, जैसे कि सम्यक्–दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्–वचन, सम्मेक् कर्म, सम्मेक् जीविका, सम्यक् व्यायाम (प्रयत्न) सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि।"[७]

भगवान के इस उपदेश से पंचवर्गीय भिक्षु जो भगवान को पथ–भ्रष्ट समझ छोड़ आये थे, संतुष्ट हुये और भगवान के कथन का अभिनंदन किया। इस धर्मोपदेश के समय आयुष्मान कौण्डिन्य को यह दृष्टि प्राप्त हो गई कि, "जो भी पैदा हुआ है, पैदा हो रहा है या पैदा होगा, वह सब नष्ट होगा।"

कौण्डिन्य को ज्ञान प्राप्त हुआ जान भगवान ने उदान कहा, "अहा कौण्डिन्य ने जान लिया, कौण्डिन्य ने जान लिया।" इसी से उनका नाम ज्ञानी कौण्डिन्य हुआ।

ज्ञानी कौण्डिन्य के पश्चात आयुष्मान वप्प, आयुष्मान भद्दिय, आयुष्मान् महानाम तथा आयुष्मान् अश्वजित को धर्म चक्षु प्राप्त हुई। यह धर्म चक्षु नई दृष्टि यही थी कि जो भी समुदय धर्म है, वह सब निरोध धर्म है। इसका कोई भी अपवाद नहीं है[८]।

धर्मचक्षु प्राप्ति के उपरांत ज्ञानी कौण्डिन्य ने भगवान् से उपसंपदा की याचना की।

भगवान ने कहा, "भिक्षु ! आ ! धर्म सु–आख्यात[९] है, अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिए ब्रम्हचर्य का पालन कर।" यही ज्ञानी कौण्डिन्य की उपसंपदा हुई। इसी प्रकार शेष चारों की भी उपसंपदा हुई।

शुरू में ही कहा गया है कि कौण्डिन्य भगवान द्वारा देशित धर्म बोध करने में पहले भिक्षु थे और भगवान के प्रथम शिष्य। जब भगवान ने यह जान

लिया कि कौण्डिन्य ने उनका धर्म ठीक तरह से जान लिया तो तथागत के श्रीमुख से उदान–वाक्य निकला– ' अञ्ञासी वत, भो कोण्डञ्ञ, ति–कौण्डिन्य तुमने जान लिया। इसी कारण उनका नाम अञ्ञा कोण्डञ्ञ या ज्ञानी कौण्डिन्य पड़ा। [१०]

बाद में भगवान ने जेतवन में भिक्षुओं की भरी सभा में ज्ञानी कौण्डिन्य के सम्बन्ध में कहा, ' सर्वप्रथम मेरा धर्म समझने वालों में ज्ञानी कौण्डिन्य सर्व श्रेष्ठ है। [११] आगे भगवान ने यह भी कहा, अधिक समय तक खड़े रहने वाले मेरे शिष्यों में ज्ञानी कौण्डिन्य प्रमुख है। " [१२]

भगवान के उपदेश देते समय ज्ञानी कौण्डिन्य भिक्षुओं की सभा में दो प्रधान शिष्यों के पीछे बैठते थे। वे नहीं चाहते कि भगवान के समीप उनकी उपस्थिति के कारण स्वयं उसको या दूसरों को कोई असुविधा हो।

द्रोणवस्तु ग्राम में ही कौण्डिन्य की मन्तानी नाम की बहन रहती थी। उस को पूर्ण नामक एक पुत्र था। सारनाथ में धर्मचक्र प्रवर्तन के पश्चात जब भगवान राजगृह में विहार करते थे तब कौण्डिन्य गये। वहाँ उन्होंने अपने भानजे को प्रव्रजित किया जो पूर्ण मैत्रायणी पुत्र के नाम से प्रख्यात हुआ।

वे वहाँ से भगवान के पास राजगृह लौट गये। उन्हें जनावास बहुत प्रिय नहीं था। एकान्त स्थान में रहना चाहते थे, जनसमूह से दूर। इस के लिये उन्होंने भगवान से अनुज्ञा मांगी। वे राजगृह से मंदाकिनी नदी के किनारे छद्दंत–वन में चले गये। वहाँ वे बारह वर्ष तक रहें। उस जंगल में हाथी अपनी सूंड में उनके लिये खाना लाते थे और अन्य प्रकार से उनकी सेवा करते थे।

अन्त समय समीप आता जान वे अंतिम बार भगवान से विदा लेने गये थे। भगवान के दर्शन कर और उनसे विदा ले हमेशा के लिये अनुज्ञा प्राप्त कर अपने चिर परिचित छद्दंत वन लौट गये। इस के कुछ ही दिनों बाद वहाँ उनका परिनिवार्ण हुआ। [१३]

कहा जाता है कि कौण्डिन्य की मृत्यु पर सारा हिमालय रो पड़ा था। [१४] उनकी दाहक्रिया में स्थविर अनुरुद्ध के नेतृत्व में पांच सौ भिक्षु उपस्थित हुये थे। उनके शरीरावशेष वेलुवन ले जाये गये। उन अवशेषों को स्वयं भगवान ने अपने श्रीहस्तों से स्तूप में प्रतिष्ठित किया। बुद्धघोषाचार्य का कथन है कि वह स्तूप उनके समय में भी विद्यमान था। [१५]

ज्ञानी कौण्डिन्य की थेर गाथा में कई गाथाएं प्राप्य हैं जो आदमी को ऊंचे जीवन की ओर ले जाती है।

---

१. श्रावक चरितय सिंहल पृ. १३।
२. बुद्धचर्या पृ. ५, राहुल सांकृत्यायन।
३. वही।
४. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा।
५. सारनाथ–बनारस के समीप।
६. महावग्गो।
७. बौद्ध धर्म : एक बुद्धिवादी अध्ययन–पृ. ४०, भदन्त आनन्द कौसल्यायन।
८. बौद्ध धर्म ,, ,, पृ. ४१।
९. सुन्दर प्रकार से वर्णित।
१०. धम्मचक्क पवत्तन सुत्त–महावग्गो।
११. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा।
१२. अंगुत्तरनिकाय।
१३. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा।
१४. वही।
१५. वही।

★

ऐश्वर्य सम्पन्न कारागृहसे ऋषिपत्तन की क्षेम–भूमि में

★

आयुष्मान् यश

(ई. पू. ५२८)

★

भगवान के धर्म में प्रविष्ट होने वाले यश छटे भिक्षु थे। पंचवर्गीय भिक्षुओं की उपसंपदा के कुछ ही दिन पश्चात श्रेष्ठी पुत्र यश तथागत के पास प्रव्रजित हुए।

यश कुमार के पिता बनारस के बहुत धनाढ्य एवं प्रभावशाली गृहपति थे। इस प्रकार के संपन्न परिवार में किसी भी एकलौते बेटे को किसी भी वस्तु की कमी कैसे हो सकती है। उस समय की समाज व्यवस्था के मुताबिक उनके पास हर प्रकार के सुखोपभोग के साधन उपस्थित थे।

लगता है उस युग में जिस के पास जितना अधिक धन हो और जितनी अधिक स्त्रियाँ हो, वह समाज में उतना ही प्रतिष्ठित व्यक्ति माना जाता था। इसके अनुसार यश कुमार के पिता के परिवार में इस की कमी नहीं थी।

यश कुमार का विवाह हो चुका था। उनको धन की तो कमी थी ही नहीं। उनके पिता ने उनके लिये वातानुकूल प्रासाद[1] बनवाये जिनमें यश कुमार ऋतुओं के अनुसार सुख विलास भोगा करते थे।

एक धनी परिवार के लिये यह कोई असाधारण बात नहीं है, न किसी युग में रही है। यश कुमार के पास सब था किन्तु कितना भी धन हो और उसके द्वारा कितने भी सुख के साधन क्यों न प्राप्त किये जाएं परंतु मानसिक शांति किसी भी प्रकार धन दे कर खरीदी नहीं जा सकती। यश कुमार के पास सब होने के बावजूद मानसिक शांति, मन की स्थिरता नहीं थी।

धन और उनके माध्यम से प्राप्त किये गये भौतिक सुख के साधनों से यश घिरा रहने पर भी उनके मन में एक प्रकार की अशांति, उदासिनता छाई हुई थी। उन्हें अपने अंतर में किसी वस्तु का अभाव सा जान पडता था किन्तु वह किस प्रकार का अभाव है उसका चित्र उनके सम्मुख स्पष्ट नहीं था। कभी कभी व्यक्ति सारी कामना पूर्ति के उपरांत भी अकारण ही अपनी वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट और उदास हो उठता है।

धीरे धीरे यश कुमार को अपना एक तरफा जीवन रसहीन प्रतीत होने लगा। उन्हें उससे विरक्ति होने लगी। व्यक्ति परिवर्तनवादी होता है। यश कुमार अपने जीवन में परिवर्तन लाना चाहते थे। वह परिवर्तन किस प्रकार का हो इसका उन्हें ज्ञान नहीं था।

प्रासादों की चार दीवारी के वातावरण में यश का दम घुटने लगा। जिस प्रकार एक कैदी बाहरी जग को देखने के लिये लालाइत हो उठता है वही हाल यश का था। संतरियों को चकमा देकर वे बंधनागृह से भागना चाहते थे। इस परिस्थिति में भागने का सबसे उपयुक्त समय मध्य–रात्रि को छोड़ और क्या हो सकता था।

यश पिपासित तडफते हृदय से उठे। उनके मन में प्रासाद से बाहर निकलने की कसक पैदा हुई। उन्हों ने अपने चारो ओर के दृश्यों का निरीक्षण किया। दासियाँ और परिचारिकायें जहाँ वहाँ अस्त व्यस्त सोई पड़ी थी, कच्चे स्मशान की भांति। इन सारे दृश्यों को देख कर उनके मन में और अधिक विराग जाग उठा।[2] वे आँधी और तूफान से भरे हृदय के साथ प्रासाद से बाहर निकले। उनके पैर अपने आप ऋषिपत की रमणीय भूमि की ओर बढे।

उस समय भगवान रात के अंतिम प्रहर में उठ कर खुले स्थान में टहल रहे थे। भगवान ने यश कुल–पुत्र को दूर से आते देखा और टहलने के स्थान से उतर कर एक जगह बैठ गये। भगवान के समीप पहुंच यश के मुख से अपने आप दुःखभरी आह निकलीं "हा! संतप्त॥ हाय... ! पीड़ा... ॥"

तथागत ने यश को सांत्वना दी– "यश यहाँ संतप्तता नहीं है। यहाँ पीड़ा नहीं हैं। यहाँ आओ और सुखपूर्वक बैठ जाओ।"

जिस प्रकार डूबते को तिनके का सहारा मिलता है, उसी प्रकार यश को भगवान के अभय वचन से आश्वासन की अनुभूति हुई। बन की सीतल हवा उनके तन और मन को सुखद लग रही थी। भगवान के बचनों ने उन पर जादूसा किया जिस से वे एक बालक की तरह उन के सामने जा बैठे।

जिस प्रकार कृषक खेत में बीज बोने से पूर्व भूमि में हल जोत कर उसे बीज बोने योग्य बनाता है उसी प्रकार भगवान ने यश को स्थिर करने के लिये अनेक तरह की कथाओं द्वारा उपदेश दिया। जब भगवान ने यश का चित्त स्थिर और धर्म बोध करने लायक पाया तो उन्होंने विमुक्ति मार्गका उपदेश दिया। संक्षेप में भगवान की देसना थी– "दुःख है; दुःख समुदय है; दुःख का निरोध हो सकता है और दुःख निरोध का मार्ग है।"

जैसे कालिमा रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी तरह रंग पकडता है उसी प्रकार भगवान का उपदेश सुन कर यश कुमार को उसी आसन पर बोध हुआ– "जो

कुछ समुदय धर्म है, वह निरोध धर्म है।" उन्हें निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुई।

इधर प्रातः होते ही यश के प्रासाद में उनको न पा कर पत्नीने व्याकूल हृदय से अपनी सास को खबर दी। यश की माता अपने पति श्रेष्ठी के पास गई और बोली–" गृहपति तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नहीं देता है।"

श्रेष्ठीने पुत्र की खोज करने में कहीं कोई गुंजाइश नहीं रहने दी। उनके नौकर चाकर चारो ओर दौड़ पड़े और स्वयं श्रेष्ठी ऋषिपत मृगदाय की ओर गये। रास्ते में श्रेष्ठी ने अपने पुत्र के सुनहले जूतों के निशान देख उन्हीं पद चिन्हों के पीछे पीछे गये। भगवान श्रेष्ठी को आते हुये देख समझ गये। भगवान ने यश को अदृश्यमान कर दिया जिस से श्रेष्ठी उन्हें न देख सके।

" भन्ते ! क्या भगवान ने यश कुल पुत्र को देखा है ?"

" गृहपति ! बैठो ! यही बैठे हुये, यहाँ बैठे यश कुल पुत्र को तुम देख सकोगे "[४] भगवान ने उत्तर दिया।

भगवान का वचन सुन श्रेष्ठी प्रसन्न हुये। इस के अतिरिक्त एक पिता को अधिक सुख किस बात का हो सकता है। श्रेष्ठीने भगवान को अभिवादन किया और एक और बैठ गए।

भगवान ने कई प्रकार से श्रेष्ठी को उपदेश दिया। भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म को समझने में वे समर्थ हुये। उन के मानस में एक नया प्रकाश सा हुआ। नई ज्योति प्रज्वलित हुई। श्रेष्ठी के मुख से यह उद्‌गार निकले, " आश्चर्य भन्ते ! आश्चर्य भन्ते !! जैसे औंधे को सीधा कर दे, ढ़ँके को उधाड दे, भूले को रास्ता बतला दे, अंधकार में तेल का प्रदीप रख दे, जिस में आँख वाले रूप देखें, ऐसे ही भगवान ने अनेक प्रकार से धर्म को प्रकाशित किया। मैं भगवान की शरण जाता हूँ, धर्म की शरण जाता हूँ और संघ की शरण जाता हूँ। आज से भगवान मुझे साँजली शरणांगत उपासक ग्रहण करें।" यही यश के पिता श्रेष्ठी सर्व–प्रथम तीन शरणों से प्रथम उपासक हुयें।[५]

जब भगवान यश के पिता को उपदेश दे रहे थे तब सुने और ज्ञात के अनुसार गंभीर चिंतन करते यश का चित्त अलिप्त हो दोषों से मुक्त हो गया। इस बात को जान कर भगवान ने सोचा कि अब यश गृहस्थ बन कर पुनः काम भोग करने योग्य नहीं है। भगवान ने यश को दृश्यमान कर पिता से मिलाया। पुत्र को देख पितानें कहा– " पुत्र ! यश तेरी माँ रोती पीटती हुई विलाप कर रही है, माता को जीवन दान दे।"

यश ने भगवान की ओर देखा, भगवान ने श्रेष्ठी को सम्बोधित किया–

" गृहपति ! क्या समझते हो, जैसे तुमने ज्ञान के साक्षात्कार से धर्म को

देखा वैसे ही यश ने भी देखा है देखें और जाने के अनुसार प्रत्यवेक्षण कर के उसका चित्त अलिप्त हो आस्रवों से मुक्त हो गया । अब क्या वह पूर्ववत काम भोग करने योग्य है ?"

श्रेष्ठी को भगवान का आदेश मानना पड़ा । अन्त में श्रेष्ठी ने यश को साथ लेकर अगले दिन भगवान को भोजनार्थ स्वगृह पधारने का निमंत्रण दिया। भगवान ने मौन भावसे स्वीकार किया ।

पिताके चले जाने के पश्चात यश ने भगवान से प्रव्रज्या ओर उपसंपदा की प्रार्थना की– "भन्ते भगवान के पास मुझे प्रव्रज्या मिलें, उपसंपदा मिलें ।"

"आओं भिक्षु" कह भगवान ने यश को प्रव्रज्या एवं उपसंपदा दी । यही आयुष्मान् यश की दीक्षा हुई । वे भगवान के छठे शिष्य और लोक में सातवें अर्हत् हुये ।

दूसरे दिन भगवान पात्र चीवर ले यश को अनुगामी बना भोजनार्थ श्रेष्ठी –गृह पहुंचे । वहाँ आसन पर बैठने के बाद यश की माता और पूर्व पत्नीने आकर भगवान को अभिवादन किया । भोजनोपरांत भगवान ने धर्मोपदेश दिया । सब ने भगवान के धर्मको समझा । यश की माता और पूर्व भार्या त्रिशरण ग्रहण कर बौद्ध उपासिकायें बनीं । वे ही सर्वप्रथम तीन शरणों से हुई उपासिकायें थीं ।

यश के चारों मित्र–विमल, सुबाहु, पूर्णजित और गवांपति ने अपने मित्र यश की गृहत्याग की कथा सुनी तो उन्होंने आपस में सलाह की– "जिस धर्म विनय में मित्र यश प्रव्रजित हुआ है वह साधारण नहीं होना चाहिए । हम भी क्यों न चल कर देखें ।"

चारों मित्र आयुष्मान् यश के पास पहुंचे । उन्हों ने यश को आदरपूर्वक प्रणाम किया । यश उन मित्रों को भगवान के पास ले गये । भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । यश ने भगवान को अपने मित्रों का परिचय दिया "भन्ते ! ये मेरे चार गृही मित्र वाराणसीके श्रेष्ठी, अनुश्रेष्ठी कुलके लड़के हैं । भगवान इन्हें उपदेश करें ।"

भगवान ने चारों को उपदेश दिया । देसनाके प्रश्चात उन्होंने भगवान से प्रव्रज्या और उपसंपदा की याचना की।

भगवान ने उन्हे दीक्षा दी, "आओं भिक्षुओं, धर्म सुआख्यात है । अच्छी तरह दुःख के क्षय के लिये ब्रह्मचर्य का पालन करो" । यही उन चारों की भिक्षु दीक्षा हुई ।

इसी प्रकार यश के दूर के रिस्तेदारों के पचास पुत्रों ने भी उनकी बात

सुनकर गृहत्याग किया । इस का श्रेय यश को ही मिला, क्यों कि उन्हीं के कारण उन सब ने गृहत्याग किया था ।

यश के बारे में स्वयं भगवान द्वारा अकसर कहा जाता था कि यश गृहस्थ जीवन में महान् सुख का जीवन व्यतीत करने वाले थे ।

यश की पूर्व जन्म की कथा में कहा गया है कि वे और उनके चारों मित्र घूम घूम कर अनेक प्रकार के सामाजिक कार्यों में जुटे रहते थे । एक दिन उन्हों ने एक गर्भिणी का शव पड़ा देखा । जलाने के लिये वे शव को स्मशान ले गये । शेष कार्य यश को सौंप चारों मित्र चले गये । शव को जलाते समय मनुष्य-शरीर की अपवित्रता देख तर्क वितर्कों से उनका दीमाग भर गया । इस पर उन्हों ने अपने मित्रों का ध्यान आकर्षित किया और बादमें अपने माता पिता तथा पत्नियों का भी । सब ने यश के कथन का अनुमोदन किया । इसी पूर्व जन्म की घटना के कारण इस जन्म में यश को गृहस्थ जीवन से वैराग्य हुआ और अपने मित्रों को भी अपने साथ ले जाने में समर्थ हुये ।

कहा जाता है कि यश जहाँ भी जाते थे तो उनके स्वागत के लिये स्वर्णमय आच्छादन प्राप्त होता[६] था और बड़ा सम्मान मिलता था ।

---

१. पब्बजाकथा—महावग्गो विनयपिटक ।

२. वही ।

३. महावग्गो ।

४. महावग्गो ।

५. वही ।

६. थेरगाथा अट्ठकथा ।

★

उनकी जटाओं से नेरंजरा नदी भर गई

★

काश्यप बंधु

(ई. पू. – ५२७)

★

अपने दोनों छोटे भाइयों से उरुवेल काश्यप अधिक प्रभावशाली थे। उस इलाके में उनकी धाक थी और समाज भी उनसे प्रभावित था। इस बात का प्रमाण तब मिला जब भगवान उन्हें अपने शिष्य बना कर राजगृह ले गये थे और राजा बिम्बिसार को इस बात का संदेह हुआ कि श्रमण गौतम उरुवेल काश्यप के पास प्रव्रजित हुये या उरुवेल काश्यप श्रमण गौतम के पास।

जैसे चंद्रमा के प्रकाश में तारों का अस्तित्व नहीं के बराबर सा रहता वैसे ही भगवान के अद्वितीय व्यक्तित्व के आगे उनके प्रभावशाली शिष्यों का अस्तित्व भी नहीं के समान ही रहा। संभवतः इसी कारण उनके जीवन के संबंध में अपेक्षा कृत अधिक जानकारी प्राप्य नहीं है। काश्यप–बंधुओं के गृहस्थ जीवन के बारे में हमें कुछ भी जानकारी नहीं है। इतना ही कह सकने के स्थिति में हैं कि उनका जन्म काश्यप गोत्रिय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। [१]

यह बहुत संभव है कि वे तीनों भाई अपने यौवन काल में ही घर से निकल उरुवेला के रमणीय भू–भाग में नेरंजरा नदी के तट पर पृथक पृथक आश्रम स्थापित कर साधना करने लगे।

साधना करते हुये उनके पास शिष्य मंडली काफी हुई। उरुवेल काश्यप के पास पांच सौं शिष्य थे। उनसे कुछ ही दूरी पर नदी काश्यप अपने तीन सौं शिष्यों को लेकर निवास कर रहे थे। उन से भी नीचे की ओर दोनों से छोटे गया काश्यप दो सौं अनुयाइयों के साथ रह रहे थे। उस प्रदेश में वे तीनों भाई भातिक जटिल या तीन–भाई–जटिल के नाम से प्रसिद्ध थे। गोत्र के नाम पर ही उनके नाम काश्यप हुये।

सारनाथ में भगवान के पास भिक्षुओं की संख्या इकसठ हो गई थी। अब वर्षा ऋतु भी समीप आ रही थी। भगवान ने भिक्षुओं को "चरथ भिक्खवे चारिकं. . . . ."का आदेश देकर स्वयं उरुवेला के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में भगवान ने तीस भद्रवर्गीयों को प्रव्रजित किया। उरुवेला में भगवान सीधे

उरुवेल काश्यपके पास गये और रात भर उनके आश्रम में विश्राम करने की इच्छा प्रकट की ।

भगवान बुद्ध को उरुवेला में ही बुद्धत्व का लाभ हुआ था बोधिवृक्ष के नीचे । यही स्थान अब बुद्धगया नाम से सुप्रसिद्ध है । उरुवेल काश्यप उसी प्रदेश में रहते थे । इसी से यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि भगवान ने उनकी प्रसिद्धि सुनी थी । उन को दीक्षित करने में भगवान ने अपने नये मार्ग के प्रचार में अधिक उपयोगी समझा होगा किन्तु भगवान उनके पास इस कारण भी गये होंगे कि उन्होंने उन्हें धर्म समझने में अधिक समर्थ समझा होगा । शुरू शुरू में उन्हें दीक्षित करना भगवान के लिये भी कठिन जान पड़ रहा था । भगवान को कई दिनों तक उरुवेल काश्यप से संघर्ष करना पड़ा । काश्यप इतने कच्चे नहीं थे कि एकदम भगवान की बात मान जाये ।

पैदल चारिका कर भगवान के उरुवेला पहुंचते पहुंचते वर्षा ऋतु लग गई थी । भगवान उरुवेल काश्यप के आश्रम पहुंच कर उन से बोले–

"काश्यप ! यदि तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मैं आज की रात तुम्हारी अग्नि शाला में विश्राम करूं ।"

"महाश्रमण मुझे कोई आपत्ति नहीं है । लेकिन वहाँ एक भयानक विषैला नागराज रहता है । कहीं तुम्हें वह हानि न पहुंचाये ।"

दूसरी बार भी काश्यप ने वही उत्तर दिया तो भगवान ने तीसरी बार कहा–

"काश्यप ! नाग मुझे कोई हानि नहीं पहुंचायेगा । तुम मुझे अग्नि शाला में विश्राम करने की स्वीकृति दे दो ।"

"महाश्रमण सुख पूर्वक विश्राम करो ।" अन्त में उरुवेल काश्यप ने अनिच्छा से ही अपनी स्वीकृति दी ।

भगवान ने अग्नि शाला में प्रवेश किया । उन्हों ने आसन के लिये तृण बिछाया । स्मृति को उपस्थित कर भगवान ध्यान मग्न हो गये । भगवान को देख नागराज क्रुद्ध हुआ । वह भगवान के ऊपर विषैला धूंवा फेकने लगा । भगवान ने सोचा– "क्यों न मैं नाग की छाल, मांस, नस, हड्डी, मज्जा को बिना हानि पहुंचाये, अपने तेज से इस के तेज को खींच लूं ।" नाग अपने प्रयत्न से विफल हो क्रोध को सहन न कर सकने के कारण प्रज्वलित हो उठा । भगवान भी तेज महाभूत धातु में समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे । उन दोनों के तेज से अग्नि शाला जलती हुई दिखाई देने लगी । उसे देख सारे जटिल अग्नि शाला को घेर कर चिल्लाने लगे– "हाय परम सुन्दर महाश्रमण नागराज द्वारा मारा जा रहा है ।"

रात के बीत जाने पर भगवान ने अपने तेज से नागराज का तेज खींचकर उसे पात्र में रख उरुवेल काश्यप के पास ले गये । वे बोले– "काश्यप यह रहा तुम्हारा नाग ।"

सांप को देख कर काश्यप ने सोचा– "यह महाश्रमण महान् दिव्य शक्ति संपन्न, महान् अनुभव संपन्न [२] है ।" वे इस घटना से प्रभावित हुये थे पर इतनी आसानी से भगवान को मानने वाले नहीं थे । फिर भी उन्हों ने भगवान से अनुरोध किया –

"महाश्रमण मेरा आतिथ्य स्वीकार करके यहीं सुखपूर्वक विहार करो। मैं भोजन आदि से तुम्हारी सेवा करूंगा ।"

उरुवेल काश्यप का आतिथ्य स्वीकार कर भगवान वहीं एक वन खण्ड में विहार करने लगे। इस बीच उरुवेल काश्यपका एक महायज्ञ होने वाला था जिस में अंग–मगध के निवासी बहुत सी खाद्य भोज्य सामग्री ले कर आने वाले थे । काश्यप ने सोचा– "यदि महाश्रमण आया तो जन समूह में उस का आदर सत्कार बढ़ेगा और मेरा गौरवादर घट जायेगा । अच्छा हो यदि वह कल न आये ।"

काश्यप की चित्त की बात भगवान ने अपने चित्त बल से जान ली । वे उस दिन नहीं गये । दूसरे दिन स्वयं उरुवेल काश्यप भगवान के पास पहुंचे और बोले– "महाश्रमण भोजन का समय हो गया है । खाना तैयार है। महाश्रमण कल क्यों नहीं आये ? हम लोग तुम्हारी प्रतीक्षा करते रहे ।"

"काश्यप । क्यों ? तुम्हारे मन में नहीं आया था कि मेरे आने से तुम्हारा आदर सत्कार घटेगा और मेरा आदर सत्कार बढेगा। क्या तुमने यह नहीं सोचा था कि मैं न आऊं तो अच्छा है ? जिस से तुम्हारे सत्कार की रक्षा हो । मैंने तुम्हारे मन की बात अपने चित्त बल से जान ली थी । काश्यप मैं इसी कारण नहीं आया ।"

भगवान के कथन से काश्यप प्रभावित तो अवश्य हुआ पर पूर्ण रूप से नहीं । इसी कारण उन्हों ने सोचा– "महाश्रमण अपने चित्तसे दूसरों का चित्त जान लेता है तो भी यह वैसा अर्हत् नहीं हैं, जैसा कि मैं हूँ ।"

कई दिनों के समागम के बावजूद काश्यप यही सोचते रहे "महाश्रमण दिव्य–शक्ति धारीं है, किन्तु वैसा अर्हत् नहीं है जैसा मैं हूँ ।" उनके अज्ञान के बारे में जान कर भगवान ने सोचा "चिरकाल तक इस मूर्ख को यही विचार होता रहेगा ।" इसी लिये भगवान ने उन्हें सावधान किया ।

"काश्यप ! न तो तुम अर्हत् हो और न ही अर्हत् मार्ग पर आरूढ़ हो,

वह सूझ भी तुम्हें नहीं है जिस से अर्हत् हो जाओं या अर्हत् के मार्ग पर आरूढ़ हो ।"

काश्यप का अभिमान नष्ट हो गया। भगवान के चरणोंपर सिर रख वे बोले– " भन्ते ! भगवान के पास मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिले ।"

भगवान ने कहा, "काश्यप तुम पांच सौं जटिलों के नायक हो, उन का क्या होगा। उनकी राय ले लो ।"

उरुवेल काश्यप ने अपने अनुयाइयों से कहा– " मैं महाश्रमण के पास ब्रह्मचर्य ग्रहण करना चाहता हूँ। तुम लोगों की जो इच्छा हो वह करो ।"

उन सब शिष्यों का उत्तर था– " हम पहले से ही महाश्रमण से प्रभावित थे। हम भी आपके साथ उन के पास प्रव्रजित होंगे ।"

सभीने अपनी जटाएँ, झोलियाँ और अग्निहोत्र की सामग्री नदी में बहा दी और भगवान के पास गये।

" भन्ते ! भगवान के पास हमें प्रव्रज्या मिलें, उपसंपदा मिले ।"

भगवान का उत्तर था– " भिक्षुओं आओं धर्म सुआख्यात है, भली प्रकार दुःख के अंत के लिये ब्रह्मचर्य पालन करो ।"

जटा और यज्ञ की सामग्री नदी में बहती देख नदी काश्यप ने सोचा कि उनके भाई पर कोई भारी विपत्ति आई है। वे अपने तीन सौ शिष्यों को लेकर उरुवेल काश्यप को देखने निकले। भाई के पास पहुँच उन्होंने अपनी शंका का समाधान करना चाहा–

" क्या यह नया मार्ग अधिक अच्छा है ?"

" हाँ आवुस् अधिक अच्छा है।" उरुवेल काश्यप ने भाई को उत्तर दिया।

नदी काश्यप ने भी अपने तीन सौ शिष्यों के साथ भगवान बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकार किया। इसी प्रकार उन दोनों का छोटा भाई, भाइयों का परिवर्तन सुन वहाँ गया और अपने दो सौ शिष्यों को लेकर भगवान के पास भिक्षु दीक्षा ग्रहण की।

भगवान के पास भिक्षुओं की संख्या एक हजार हो गई। भगवान उन्हें लेकर गया सीर्स पर्वत, वर्तमान ब्रह्मयोनी पर विहार करने लगे। वहाँ भगवान ने उन हजार भिक्षुओं को बड़ा महत्वपूर्ण उपदेश दिया–

" भिक्षुओं ! सभी जल रहा है। क्या जल रहा है ? चक्षु जल रहा है। रूप जल रहा है। चक्षु विज्ञान जल रहा है। श्रोत जल रहा है। शब्द जल रहा है। श्रोत विज्ञान जल रहा है। घ्राण जल रहा है। गंध जल रहा है।

घ्राण विज्ञान जल रहा है। .... जिव्हा जल रही है। रस जल रहा है। जिव्हा विज्ञान जल रहा हैं। .... काया जल रही है। स्पर्शेन्द्रिय (स्प्रष्टव्य) जल रहा है। काय विज्ञान जल रहा है। मन जल रहा है। धर्म मनका चिन्तन जल रहा है। मनो विज्ञान जल रहा है।"

"भिक्षुओं जो इस यथार्थ अनित्यता को देखता है, उसे निर्वेद प्राप्त होता है। निर्वेद प्राप्त होने से वह औसक्ति रहित होता हैं। आसक्ति रहित होने से वह विमुक्त होता है।" [३]

यही है भगवान बुद्ध द्वारा उपदिष्ट निर्वाण। यही है भगवान बुद्ध द्वारा इसी शरीर में साक्षात् किया जानेवाला मोक्ष।" [४]

भगवान का यह उपदेश श्रवण कर काश्यप-बंधुओं को तथा अन्य भिक्षुओं को धर्म का यथार्थ ज्ञान हुआ। वे धर्म के मर्मस्थान को समझ सकें।

भगवान बुद्ध गया सीस में इच्छानुसार विहार कर सभी एक हजार भिक्षुओंके महान् संध के साथ चारिका के लिए चल दिये। क्रमशः चारिका करते करते भगवान राजगृह पहुँचे।

मगधराज श्रेणिय बिम्बिसारने अपने माली के मुंह से भगवान की कीर्ति सुनी और उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान बुद्ध राजगृह में ही यट्ठिवन के सुप्रतिष्ठित चैत्य में विराजमान हैं।

मगधराज भगबान के दर्शनार्थ बड़ी परिषद् के साथ गये। अभिवादन कर सब एक ओर बैठ गये। महा-भिक्षु संघ में भगवान के साथ उरुवेल काश्यप को देख कर मगधराज एवं उनके अमात्यों को यह शंका हुई कि श्रमण गौतम उरुवेल काश्यप के पास प्रव्रजित हुये या उरुवेल काश्यप श्रमण गौतम के पास? उनका चित्त-वितर्क भगवान ने अपने चित्तसे जान लिया।

भगवान नें उरुवेल काश्यप को संबोधित किया- "काश्यप तुमने क्या देख कर आग छोड़ दी? तुम्हारा अग्नि-होत्र कैसे छूटा?"

काश्यप ने विनयपूर्वक भगवान को प्रत्योत्तर दिया- "रूप, शब्द और रस में,' काम भोगों में, स्त्रियों में, रूप शब्द कामना से किया जाने वाला यज्ञ, यह रागादि उपाधियाँ मल है। यह मैनें जान लिया। इस लिए मैं यज्ञ और हवन से विरत हुआ।"

"काश्यप! यज्ञ और हवन में तुम्हारा मन नहीं लगा तो तुम्हारा मन कहाँ रमा?"

"रागादि रहित निर्वाण पद को देख कर मेरा मन उस में रमा।" यह कह उरुवेल काश्यप आसन से उठ भगवान के चरणों पर माथा रख बोले- "भन्ते! भगवान मेरे शास्ता है, मेरे गुरू हैं, मैं श्रावक (शिष्य) हूँ।"

मगधराज तथा उनके अमात्यों का संदेह दूर हुआ।

बाद में भिक्षुओं की सभा में भगवान ने उरुवेल काश्यप को महान् समुदाय के प्रमुखों में प्रमुख घोषित किया। अन्य भिक्षुओं की मण्डली कभी घटती बढ़ती थी। किन्तु उरुवेल काश्यप के साथ हमेशा एक हजार भिक्षु विचरण करते थे।[५] इन एक हजार भिक्षुओं द्वारा कई भिक्षु बनाये गये थे जिनकी संख्या काफी थी।[६] सेनक स्थविर काश्यप का भानजा था। वच्छपाल उन भिक्षुओं में से था जो राहगृह में उरुवेल काश्यप द्वारा भगवान की वंदना करने के कारण प्रव्रजित हुये थे।

जिस समय वे भगवान के पास प्रव्रजित हुये उस समय उनकी आयु एक सौं पच्चीस वर्ष की थी।[७] जहाँ तीनों भाइयों की प्रव्रज्या हुई थी वहाँ तीन स्तूप बहुत बाद में भी विद्यमान थे।[८]

उरुवेल काश्यप की थेरगाथा में छः गाथाएँ उपलब्ध हैं। जिन में उन्होंने बुद्ध द्वारा अपनी पराजय का जिक्र किया है।

---

१. अंगुत्तरनिकाय–अट्ठकथा।
२. महावग्ग–विनय पिटक।
३. अदित्तपरियायो–महावग्ग।
४. बौद्ध–धर्म एक बुद्धिवादी अध्ययन, पृ. ४४. भदंत आनंद कौसल्यायन।
५. श्रावक परितय, पृ. २१०।
६. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा।
७. Rockhill, op, cit., 40.
८. Beal, Bud. Records, ii 130.

★

शाक्यों को प्रसन्न करने वाले

★

कालुदाई

(ई. पू. ५२७)

★

वे सिद्धार्थ गौतम कुमार के बाल्यकाल के साथी थे। वे उन भाग्यवानों में से थे जो सिद्धार्थ कुमार के जन्म के दिन ही पैदा हुये थे। इस अर्थ में वे भगवान के अन्य शिष्यों से भाग्यशाली माने जा सकते हैं।

कालुदाई का जन्म कपिलवस्तु में हुआ था। सिद्धार्थ कुमार भी उसी दिन जन्में। कालुदाई के पिता राजा शुद्धोदन के अमात्य थे। उन्तीस वर्ष की आयु तक वे सिद्धार्थ कुमार के साथ उनके मित्र के रूप में रहे। दोनों एक साथ जन्में, साथ खेलें, साथ साथ विद्याध्ययन करते रहें। अपने पिता के बाद कालुदाई ने शुद्धोदन की आज्ञा पर पिता का पद संभाला।

भगवान हजारों शिष्यों के साथ राजगृह में विराजमान थे। उनके समाचार कपिलवस्तु में पहुंच रहे थे। पुत्र को देखने के लिये राजा शुद्धोदन की आँखे तरस रही थीं। उधर राजकुमारी यशोधरा भगवान के आगमन की बांट जोह रही थी। सात वर्षीय राहुल कुमार अपनी माता से पिता की अद्भुत कथाएँ सुन उन्हें देखने को आतुर था। कपिलवस्तु की जनता की आँखे भगवान के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं।

अब राजा शुद्धोदन और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे। उन्हों ने अपने अमात्यों को बुला कर कहा, 'कुछ आदमी लेकर राजगृह प्रस्थान करो। वहाँ जा कर मेरे बचन से निवेदन करो– "भगवान, आपके पिता शुद्धोदन महाराज आपको देखना चाहते हैं। मेरे पुत्र को यहाँ ले आओ।"

"अच्छा देव," कह अमात्य अपने साथ प्रतिष्ठित आदमियों को लेकर यथाशीघ्र ही राजगृह भगवान के पास गये। उस समय भगवान बड़ी परिषद के बीच विराजमान हो धर्मोपदेश दे रहे थे। पास जा कर अमात्यने सोचा–"राजा का संदेश अब कुछ देर पड़ा रहे। भगवान को बाद में सुनाऊंगा।"

एक ओर खड़े हो अपने साथियों के साथ अमात्य भगवान का उपदेश सुनने लगे। उपदेश के पश्चात उन्हों ने खड़े ही खड़े धर्म का ज्ञान प्राप्त

किया। इस अवस्था में वे राजा का संदेश याद नहीं रख सके। वे सब के सब भगवान के पास प्रव्रजित हो गये।

इधर कपिलवस्तु में राजा शुद्धोदन दूतों का कोई समाचार न सुन दूसरे मण्डल को भेजने की तैयारी करने लगे। दूसरा मंडल भी गया पर उस की भी वही स्थिति हुई जो प्रथम मण्डल की हुई थी। बार बार के विफल प्रयत्न के पश्चात राजा को लगा– "इतने लोग मुझसे श्रद्धा व प्रेम करते हुये भी न कोई संदेश ला सका न लौट कर आ ही सका। अब इस कार्य को कौन कर सकेगा?" उन्हों ने अपने मंत्रियों की ओर देखा। उनकी दृष्टि कालुदाई पर जा रुकी। कालुदाई राजा के प्रियतम एवं अति विश्वस्त मंत्री थे। राजा ने उनसे निवेदन किया–

"तात्! कालुदाई। मैं अपने प्रिय पुत्र को देखना चाहता हूँ। जो लोग उन्हें लाने गये उन में से न कोई संदेश लाने में समर्थ हुआ और न लौट ही सका। अब इस शरीरका कोई भरोसा नहीं। मैं जीते जी एक मर्तबा पुत्र को देखना चाहता हूँ। क्या तुम मेरे पुत्र को दिखा सकोगे?"

"देव दिखा सकूंगा यदि प्रव्रज्या की अनुज्ञा प्राप्त हो।" कालुदाई का विनम्र उत्तर था।

"तात् तुम प्रव्रजित हो या अप्रव्रजित रहो, पर किसी तरह मेरे पुत्र को ला कर दिखा दो।" राजाने द्रवित हृदय से कहा।

भगवान के लिये राजा का संदेश ले कालुदाई कुछ साथियों सहित राजगृह पहुंचे। उस समय तथागत धर्मोपदेश में निमग्न थे। वे सभा के एक सिरे पर खड़े हो भगवान का उपदेश सुनने लगे। अन्त में वे भी प्रव्रजित हो वहीं रहने लगे। किन्तु जिस कार्य के लिये वे भेजे गये थे वह कार्य उन्हें याद था।

भगवान बुद्ध के व्यक्तित्व और बचनों में कितनी अलौकिक शक्ति रही होगी? वे जो भी कहते, जो कुछ करते उस से कोई भी प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता था। इसी कारण अन्य धर्मीय उन्हें शब्द जाल डालने वाले मायावी जादुगर होने का आरोप लगाते थे।

राजगृह से गये कालुदाई को दो माह बीत चुके थे। राजा शुद्धोदन को दिया हुआ बचन उन्हें स्मरण हुआ। फाल्गुण–पोर्णिमाके अवसर पर उन्हों ने सोचा–"अब हेमन्त ऋतु बीत गई। वसंत का आगमन हो रहा हैं। किसानों नें शस्य आदि काट लिये। रास्ता साफ हो गया। पृथिवी हरित तृण से हरी भरी हो गई है। बन–उद्यान प्रफुल्लित हुये हैं। रास्ते जाने योग्य हो गये हैं। यह दसबल के लिये अपनी जाति को देखने कपिलवस्तु पधारने का उचित समय है।"

वे भगवान के समीप जाकर बोले– "भदन्त ! वृक्षों के पुराने पत्ते झड़ गये हैं। नये पत्तों से सारे वृक्ष लाल अंगार से दिखाई दे रहे हैं। उन वृक्षों में फल लग रहे हैं। भगवान यह रसों का समय है।"

भगवान मौनभाव से सुन रहे थे।

उदाई स्थविर कहते गये– "महावीर ! इस समय न बहुत शीत है, न बहुत उष्ण। न ही अन्न की कोई कठिनाई है। हरियाली से भी भूमि हरित है। महामुनि। यह पधारने का योग्य समय है।"

भगवान बोले, "उदाई क्या बात है ? जो इतने मधुर स्वर से यात्राकी प्रशंसा कर रहा है ?"

"भन्ते आपके पिता शुद्धोदन महाराज भगवान को देखने के लिये लालाईत हैं। उन्हें अनुगृहित करे।"

"अच्छा उदाई मैं यात्रा के लिये तैयार हूँ। भिक्षु संघ को कहो कि यात्रा का व्रत पूरा करें।"

अंत में कालुदाई भगवान को कपिलवस्तु ले जाने में सफल हुये। उनके कहने के ढंगसे, यात्राके वर्णन के तरीके से और उनकी व्यवहार कुशलता के कारण भगवान यात्राके लिये तैयार हुये।

कहा जाता है कि कालुदाई के जन्में दिन कपिलवस्तु में चारों ओर आनंद ही आनंद था। क्यों कि उस दिन सिद्धार्थ कुमार जन्में थे। इसी कारण उनका नाम उदाई (उदग्गचित्तदिवसे जातत्ता) पड़ा और थोडा शाम वर्ण होने के कारण उन्हें काल कहा गया। इस प्रकार उनका नाम काल-उदाई या कालुदाई पड़ा।

उदाई के कारण कपिलवस्तु वासी जनता को भगवान के आगमन की सूचना मिल गयी थी। लोग श्रद्धा भाव से भगवान के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह आनंद, यह प्रसन्नता उन्हें उदाईके सफल प्रयत्नों के कारण ही नसीब आई थी। इसी लिये भगवान ने भिक्षुओंकी भरी सभा में उदाई के बारे में उदान कहा था, "जाति वालों को प्रसन्नता प्रदान करने वालों में उदाई सर्व श्रेष्ठ है (कुलप्पसादकानं अग्गो)।"

कई बार भगवान ने मुक्त कंठ से उदाई की प्रशंसा की है। एक समय भगवान कोसंबीके घोसिताराम में विहार करते थे। उस वक्त आयुष्मान् कालुदाई गृहस्थों की बड़ी परिषद् को उपदेश दे रहे थे। यह देख आनंद भगवान के पास गये। अभिवादन कर एक ओर बैठ उन्होंने भगवान से निवेदन किया–

"भन्ते ! आयुष्मान् उदाई गृहस्थ–परिषद् को उपदेश दे रहा है ।"

भगवान बोले –

"आनंद ! परिषद् को उपदेश करना आसान काम नहीं है । आनंद ! उपदेशक को पांच प्रकार की बातों को उपस्थित रख धर्मोपदेश देना होता है ।[२] यहाँ भी भगवान ने उदाई की प्रशंसा की ।

---

१. अंगुत्तरनिकाय । थेरगाथा ।

२. उदायी सुत्त–अंगुत्तरनिकाय, भाग, २, पृ. ४३३ ।

★

धम्म सेनापति

★

सारिपुत्र

(ई. पू. ५२७)

★

जौहरी रत्न को देखते ही उसका मूल्य जान लेता है । कुशल वैद्य बोमार को देखने मात्र से रोग का निदान लगा लेता है । उसी प्रकार सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को देखते ही भगवान ने उन्हें पहचान लिया और भिक्षुओं से कहा, "य दोनों मेरे अग्रश्रावक होंगे ।"

सारिपुत्र का जन्म नालक ग्राम में हुआ था । उनके पिता वंगन्त और माता रूपसारी थी । [१] गांव के परिवारों में उनका परिवार प्रधान माना जाता था । सारिपुत्र ज्येष्ठ पुत्र थे । घर में वे उपतिष्य नाम से जाने जाते थे ।[२] बाद में माता के नाम पर सारिपुत्र [३] के नाम से प्रसिद्ध हुये ।

सारिपुत्र के पिता का परिवार काफी बड़ा था और वैभव सम्पन्न भी । चुन्द, उपसेन, और रेवत नाम के उनको तीन भाई थे तथा चाला, उपचाला और सिसूपचाला नाम की तीन बहने भी थीं । बाद में वे सब क्रमशः प्रव्रजित हुये । [४]

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के परिवार में सात पीढ़ियों से मैत्री संबंध चल रहा था । इसी लिये दोनों बचपन से ही मित्र थे । कहा जाता है कि सारिपुत्र के पास पांच सौं पालकियाँ थी और मौद्गल्यायन के पास पांच सौं गाड़ियाँ जिन में शिक्षित अश्व जोते जाते थे ।

एक दिन दोनों मित्र व्यंगात्मक नाटक देखने गये । उस नाटक के किसी विशेष दृश्य के कारण उन्हें वस्तुओं की असारता का ज्ञान हुआ जिस से दोनों ने गृहत्याग का निश्चय किया । घर से बेघर हो दोनों परिव्राजक भेष में साधना करते हुये काफी धूमें । भ्रमण के पश्चात वे राजगृह में संजय परिव्राजक के शिष्य बन कर रहने लगे । अल्पकाल में ही दोनों संजय के दाये बाये हाथ के समान स्थान प्राप्त कर ढाई सौं शिष्यों का संचालन करने लगे । किन्तु मित्र द्वै अपनी वर्तमान परिस्थिति से संतुष्ट नहीं थे । संजय के पास उनके लिये कोई

नया दर्शन जानने लायक नहीं था। वही रहते दोनों ने आपस में प्रतिज्ञा की कि जो भी प्रथम अमृत सत्य को प्राप्त करें वह दूसरे को बताएँ।

भगवान बुद्ध विशाल भिक्षु संघ को साथ ले उरुवेला से राजगृह पधारें थे। बोधिसत्त्व अवस्था में मगधराज को बुद्ध होने पर दर्शन देने का बचन का ख्याल कर ही भगवान राजगृह गये थे।

उस समय भगवान वेलुवन में विहार करते थे। आयुष्मान् अश्वजित पूर्वान्हि समय चीवर पहन और पात्र लेकर अतिसुंदर आलोकन विलोकन के के साथ नीचीं नजर और संयम से राजगृह में भिक्षा के लिये प्रविष्ट हुये। सारिपुत्र परिव्राजक ने उन्हें देखा और सोचा, "लोक में अर्हत् या अर्हत् मार्ग पर आरुढ हैं, यह भिक्षु उन में से एक है। क्यों न मैं इस भिक्षु के पास जाकर पूछू–"आवुस! तुम किस के नाम पर प्रब्रजित हुये हो? तुम्हारा शास्ता (गुरु) कौन हैं? तुम किस के धर्म को मानते हो?" किन्तु उन्होंने शिष्टाचार का ख्याल कर–सोचा कि यह उनसे प्रश्न पूछने का समय नहीं है। वे घर घर भिक्षा के लिये घूम रहे हैं। क्यों न मैं उनके पीछे पीछे जावूं?

भिक्षा के अनंतर एकांत स्थान जा आयुष्मान् अश्वजित ने भोजन किया। उनके भोजनोपरांत सारिपुत्र उनके पास गये और अभिवादन कर बोले, "आवुस तुम्हारी इंद्रिया प्रसन्न हैं, तुम्हारा छबि वर्ण परिशुद्ध तथा उज्वल है, तुम्हारा शास्ता कौन है और तुम किसका धर्म मानते हो?"

"आवुस! शाक्य कुलसे प्रव्रजित शाक्य पुत्र जो महा श्रमण हैं उन्हीं भगवान को गुरु मान मैं प्रब्रजित हुआ। वे ही भगवान मेरे शास्ता हैं। मैं उन्हीं भगवान का धर्म मानता हूँ," भिक्षु अश्वजित ने उत्तर दिया।

"आयुष्मान् के शास्ता किस सिद्धांत को मानते हैं? किस सिद्धांत का उपदेश देते हैं?"

"आवुस मैं नया हूँ, इस धर्म में अभी मैं नया हीं प्रव्रजित हुआ हूँ। मैं तुम्हें विस्तार से नहीं बता सकता किन्तु संक्षेप में कह सकता हूँ।"

सारिपुत्र परिव्राजक बोले, "ठीक है मित्र। कम या अधिक जितना भी हो कहो। सारांश ही क्यों न हो।"

अश्वजितने कहा–

'ये धम्मा हेतुप्पभवा,
हेतुतेसं तथागतो आह।
तेसंचयो निरोधो,
एवं वादी महासमनो।'[५]

" जितने भी धर्म हैं वे सब कारण (हेतु) से उत्पन्न होते है, इनका हेतु (कारण) तथागत बतलाते हैं और उनका निरोध (विनाश) का मार्ग बतलाते हैं । महाश्रमण इसी सिद्धांत को मानते हैं । "

भिक्षु अश्वजित द्वारा सुनाई गई उक्त गाथा सारिपुत्र ने कई बार दोहराई । उसे अच्छी तरह समझा । उससे उनकी समझ में आ गया कि संसार में जो भी विद्यमान है, जो कुछ समुदय धर्म हैं वे सब निरोध धर्म हैं, सब विनष्ट होने वाले हैं । उन्हें परिशुद्ध ज्ञान दृष्टि मिली, धर्म चक्षु उत्पन्न हुई ।

वहां से सारिपुत्र अपने मित्र मौद्गल्यायन को मिलने गये । उन्हें दूर से ही आते देख मौद्गल्यायन ने आश्चर्य से पूछा, " आवुस तुम्हारी इन्द्रिया प्रसन्न हैं । तुम्हारा वर्ण तेजस्वी एवं उज्वल है । मित्र तुमने अमृत को तो नहीं पाया ? "

" हाँ ! मित्र ! अमृत पा लिया । "

" मित्र तुमने अमृत को कैसे पाया ? "

सारिपुत्र ने आदि से अंत तक अश्वजित की मुलाखत का वर्णन किया । पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उन्हों ने मौद्गल्यायन को अश्वजित द्वारा उपदिष्ट गाथा सुनाई । इससे मौद्गल्यायन को भी ज्ञान चक्षु उत्पन्न हुई । उन्हों ने सारिपुत्र से कहा, " मित्र भगवान के पास चलें । वे हमारे शास्ता हैं । पहले ये ढाई सौं परिव्राजक जो हमारे आश्रयसे रहते हैं, उन्हें भी देख लें । उन्हें कह दे कि जैसी उनकी इच्छा है वैसा करें ।"

दोनों मित्र अपने ढाई सौ सहधर्मियों के पास गये और अपना निर्णय सुनाया, "आवुसो हम भगवान बुद्धके पास जा रहे हैं । वे अब से हमारे शास्ता होंगे ।"

वे बोले, " हम दोनों के आश्रयसे आप लोगों को देख कर यहाँ रह रहे हैं । यदि आप भगवान का शिष्यत्व ग्रहण करते हैं तो हम भी आपके साथ चलते हैं ।" सब को ले कर दोनों मित्र संजय परिव्राजक के पास गयें[1] । उन्हों ने संजय से कहा, "आयुष्मान् हम भगवान बुद्ध के पास जा रहे है, वे ही हमारे शास्ता होंगे ।"

" आयुष्मानो बस करो ! मत जाओं उनके पास । हम तीनों मिल कर इस पारिव्राजक गणका नेतृत्व करेंगे ।" संजयने दोनों को सलाह दी पर वे तो संजय को भी अपने साथ ले जाना चाहते थे । मित्रों ने तीन बार उनसे निवेदन किया और संजयने तीनों बार जाने से मना किया । अन्त में संजयको वहीं छोड़ ढाई सौं परिव्राजकों को साथ लिये वे भगवान के पास वेलुवन गये ।

भगवान ने सारिपुत्र और मौद्गल्यायन को दूरसे ही आते देख भिक्षुओं से

कहा, "भिक्षुओं ये जो दो मित्र कोलित (मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (सारिपुत्र) आ रहे हैं, मेरे अग्रश्रावक (प्रधान शिष्य) होंगे ।"

सारिपुत्र–मौद्गल्यायन भगवान के समीपस्थ गये । उन्हों ने भगवान के चरणों में सिर रख याचना की, " भन्ते हमें भगवान के पास प्रव्रज्या मिले, उपसंपदा मिलें ।"

भगवान ने दीक्षित करने वाले सूत्र को दोहराया, " भिक्षुओं आओ, धर्म सुआख्यात है । अच्छी प्रकार दुःखके क्षय के लिये ब्रह्मचर्य–विचरण करो ।" यही उनकी उपसंपदा हुई । [७]

सारिपुत्र बहुत ही प्रत्युत्पन्नमति थे । अश्वजितके मुंहसे गाथा सुनने के तुरंत बाद वे स्रोतापन्न हुये । सारिपुत्र से गाथा सुन कर कोलित भगवान के पास तुरंत जाना चाहते थे । परंतु सारिपुत्र हमेशा अपने मार्गदर्शकों के प्रति इमानदार रहें थे । उन्होंने सलाह की कि पहले संजय के पास जाएँ और उन्हें भी साथ ले जाए किन्तु संजयने साथ चलने से इनकार कर दिया था ।

मौद्गल्यायन ने प्रव्रज्याके सातवे दिन ही अर्हत् पद प्राप्त कर लिया था परंतु सारिपुत्र को इस के लिये दो सप्ताह लगे । उस समय वे भगवान के साथ राजगृह में सूकरखंततलेन में विहार करते थे । वहीं भगवान ने दीघनख को दीघनख सुत्त या वेदना परिग्गह सुत्त[८] का उपदेश दिया । उस वक्त सारिपुत्र भगवान को पंखा झल रहे थे । उपदेश के अंत में वे अर्हत् पद को प्राप्त हुये । दीघनख परिब्राजक सारिपुत्रका भानजा था ।

सारिपुत्र–मौद्गल्यायन भगवान के दाये बाये हाथ के समान थे । विशेष अवसरों पर भगवान दोनों को अपने साथ ले जाया करते थे ।

भगवान प्रथम बार कपिलवस्तु पधारे थे । राजा शुद्धोदन के महल में सब लोग उनके दर्शनार्थ आये परंतु राजकुमारी यशोधरा उनमें नहीं थी । अपनी तपस्या पर राजकुमारी को पूर्ण विश्वास था कि स्वयं भगवान उन्हें दर्शन देने आयेंगे । अंतमें यही हुआ । सारिपुत्र–मौद्गल्यायन को साथ ले भगवान यशोधरा के महल गये । भगवान यशोधराकी भावनाओं को जानते थे. इसी कारण उन्हों ने दोनों प्रधान शिष्यों को कहा कि यशोधरा जिस प्रकार भी दर्शन करना चाहे करने दे, उसे न रोकें ।

कई अवसरों पर भगवान ने सारिपुत्र–मौद्गल्यायन की मुक्त कंठसे प्रशंसा की और भिक्षुओं को उनका अनुकरण करने का आदेश दिया । भगवान प्रतिपादन करते है–"भिक्षुओं सारिपुत्र-मौद्गल्यायन का अनुकरण करो, उनको सहयोग दो । वे पण्डित हैं । अपने सहब्रह्मचारियों पर अनुग्रह करने वाले हैं । भिक्षुओं सारिपुत्र जननी के समान है तो मौद्गल्यायन नर्स (दाई) के समान ।

भिक्षुओं सारिपुत्र चार आर्य सत्यों को विस्तारपूर्वक समझा सकते । हैं उन्हें स्पष्ट करके सामने खोल कर रख सकते हैं ।" यह कह भगवान वहाँ से उठ चले गये ।

भगवानके कथन का तात्पर्य जान सारिपुत्र उपस्थित भिक्षुओंको उपदेश देने लगे । सर्व प्रथम भगवान ने सारनाथ में जो धर्मोपदेश दिया था उसे ही सारिपुत्र ने सरल सब्दों में समझाया। दु:ख क्या है ? उस से मुक्ति किस प्रकार संभव है ? इस प्रकार उन्होंने संपूर्ण आर्यसत्य और आर्यअष्टांग मार्ग का उपदेश दिया । [१०]

एक बार भगवान गोसिंगशाल वन में विहार करते थे। उनके साथ उनके प्रधान शिष्य भी थे, जैसे सारिपुत्र-मौद्गल्यायन, महाकाश्यप, अनुरुद्ध, रेवत, आनंद आदि । आनंद भगवान के उपस्थायक थे । इसी कारण हमेशा छाया की तरह भगवान के आस पास ही रहा करते थे । बनखण्ड के विशालत्व के कारण अन्य भिक्षु वही पृथक पृथक विहार करते थे । महामौद्गल्यायन महाकाश्यप के पास जा कर बोले, "आयुष्मान् आओ, धर्म श्रवण के लिये आयुष्मान् सारिपुत्र के पास चलें ।"

"आयुष्मान् ठीक है चलो ।" महाकाश्यप ने उत्तर दिया ।

आयुष्मान् अनुरुद्ध को भी साथ ले वे सारिपुत्र के पास गये । यह जान कर आनंद आयुष्मान् रेवत के पास पहुंच कर बोले, "आयुष्मान् रेवत, सत्पुरुष धर्मश्रवणार्थ आयुष्मान् सारिपुत्र के पास पधारे हैं । आओं हम भी चलें ।"

"हाँ आवुस चलो ।" रेवत ने उत्तर दिया। दोनों सारिपुत्र के पास गये । दोनों को आते देख सारिपुत्र ने कहा, "आओ आयुष्मान् आनंद ! भगवान के उपस्थायक, भगवान के साथ विचरण करने वाले आयुष्मान् आनंद का स्वागत है ।"

"आयुष्मान् आनंद चांदनी सुंदर है, गोसिंगशालवन बहुत सुंदर लग रहा है । सारे शाल वृक्ष प्रफुल्लित हैं मानों दिव्य सुगंधित हवा बह रही हो । आनंद किस प्रकार के भिक्षु के कारण यह गोसिंगशालवन सुशोभित हो रहा है ?"

आयुष्मान् आनंद ने उत्तर दिया, "जो बहुश्रुत हैं, जो सूत्रों को धारण करने वाला है, जो सूत्रों का संचय करने वाला है, जिस ने धर्म को अच्छी तरह जान लिया है, इसी प्रकार के भिक्षु के कारण यह गोसिंगशालबन शोभायमान है ।" उनका संकेत स्वयं सारिपुत्र की ओर था ।

सारिपुत्र ने वही प्रश्न आयुष्मान् रेवत से पूछा । उन का मत था, "जो शून्यावास-प्रेमी है, जो विपस्सना भावनासे समन्वित हैं, इस प्रकार के भिक्षु से यह वन शोभा दे रहा है :" उनका संकेत महाकाश्यप की ओर था ।

आयुष्मान् अनुरुद्धका विचार था, "जो भिक्षु विशुद्ध दिव्य चक्षु से मनुष्य लोक को पार कर सहस्त्र लोक को देखता है, इस प्रकार के भिक्षु के कारण इस वन की शोभा बढ रही है।" यह संकेत महामौद्गल्यायन पर था। -

आयुष्मान् महाकाश्यप के विचारसे, "जो भिक्षु स्वयं अरन्यवासी हो और उसका प्रशंसक भी हो, भिक्षाचारी हो उसका प्रशंसक हो, पांसुकुलिक हो और उसका प्रशंसक हो, त्रिचीवरधारी हो कर उसका प्रशंसक हो, अल्पेच्छिक हो उसका प्रशंसक हो, शील संपन्न, समाधि संपन्न, प्रज्ञावान, विमुक्ति युक्त हो, ऐसे भिक्षु से यह वन सुशोभित है।"

महामौद्गल्यायन बोले, "जो भिक्षु अभिधर्म की चर्चा करते हैं, एक दूसरे से प्रश्न पूछते हैं·····इस प्रकार के भिक्षु से यह वन शोभायमान है।"

अन्तमें प्रश्न कर्ता सारिपुत्र बोले, "जो भिक्षु चित्त को वस में किये रहता है न कि स्वयं चित्त के वस में,·····इस प्रकार के भिक्षु से यह वन शोभा देता है।"

सारिपुत्र ने पुनः कहा, "आयुष्मानो हमने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार व्याख्या की है। अब हम भगवान के पास चले। भगवान जो व्याख्या करेंगे उसी को स्वीकार करेंगे।"

भगवान के पास पहुंच सारिपुत्र ने भगवान को सबकी व्याख्या सुनाई तथा महामौद्गल्यायन ने सारिपुत्र की व्याख्या सुनाई। भगवान ने साधुवाद दे कर कहा, "सभीने यथार्थ व्याख्या की है। जो जिन गुणोंसे युक्त है उसने वैसी ही व्याख्या की है।"

सारिपुत्र ने कहा "भन्ते सुभासित क्या है?"

"सारिपुत्र पर्याय से सभी सुभासित हैं: फिर भी मैं सुनाता हूँ कि किस प्रकार के भिक्षु से गोसिंगशालवन सुशोभित है। जो भिक्षु भोजनोपरांत पालथी मार कर शरीर को सोधे किये चेहरे पर स्मृति उपस्थित कर बैठता है और निश्चय करता है, "मैं तबतक नहीं उठूंगा जबतक मैं आश्रवों को चित्तसे न निकाल दूंगा।' "सारिपुत्र इस प्रकार के भिक्षु से गोसिंगशालवन की शोभा बढ़ती है।" सभी ने भगवान का अभिनंदन किया।[११]

एक समय भिक्षु, भिक्षुणियों की सभा में भगवान ने सारिपुत्र के बारे में कहा था, "भिक्षुओं तथागत सर्वश्रेष्ठ है-(एतदग्गं यहापञ्ञानं)।[१२] तथागत के बाद सारिपुत्र सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी है।[१३]

भगवान कभी कभी केवल शीर्षक सुझा कर सभा से उठ जाते और सारिपुत्र उस विषय पर विस्तार से गंभीरता पूर्वक उपदेश देते। बाद में भगवान

उसकी बड़ी प्रशंसा करत । एक स्थान [१४] पर भगवान सारिपुत्र की भूरी भूरी प्रशंसा करते दिखाई देते हैं । जब सेल ने भगवान से प्रश्न किया था कि उनका सेनापति कौन है । उस प्रश्न पर भगवान का उत्तर है, "मेरे धर्मसेनापति सारिपुत्र है जो धर्म के अनुप्रवर्तक है ।" [१५] भगवान और कहते हैं, "सारिपुत्र तुम ज्ञानी हो । तुम्हारा ज्ञान प्रकट एवं व्यापक है, वेगवान उल्लास पूर्ण तेज और दुराराध्य है । जैसे चक्रवर्ती राजा का ज्येष्ठ पुत्र अपने पिता के समान चक्र घुमाता है उसी प्रकार तुमने भी ठीक ढंग से धर्मचक्र घुमाया, जैसे कि मैंने धर्मचक्र प्रवर्तित किया ।" इस तरह सारिपुत्र धर्मसेनापति के पद से विभूषित हुये, जैसे आनंद धर्मभाण्डागारिक ।

सारिपुत्र श्रावस्ती में भगवान की उपस्थिति में हाथी के पैरों की उपमा दे कर चार आर्यसत्यों को समझाते हैं [१६] "आयुष्मानों जितने भी जंगम प्राणी हैं उनके पैर हाथी के पैरों में समा जाते हैं क्यों कि सब प्राणियों के पैरों में हाथी के पैर अग्र हैं । उसी प्रकार जितने भी कुशल धर्म हैं वे सब चार आर्यसत्यों में समा जाते हैं । उसी के अंतर्गत आते हैं ।"

भगवान अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम श्रावस्ती में विहार करते थे । वहाँ भिक्षुओं को उपदेश दे भगवान ने सारिपुत्र का उदाहरण दे कर परिपूर्ण शिष्य के लक्षण बताये । उन्होंने कहा, "भिक्षुओं सारिपुत्र पण्डित है, महाप्रज्ञावान है, तीक्ष्ण ज्ञान युक्त है, बींधनेवाली प्रज्ञासंपन्न है, भिक्षुओं सारिपुत्र की तरह तथागत के औरस पुत्र, धर्मध्वज, धर्म निर्माण करने वाले, धर्म दायाद बनो आमिसदायाद मत बनो । भिक्षुओं सारिपुत्र ने तथागत द्वारा अनुत्तर धर्मचक्र प्रवर्तन का सम्येक रूप से अनुप्रवर्तन किया है !"

सारिपुत्र एक जगह कहते हैं कि व्यक्ति को हृदय की भावना में नहीं बहना चाहिए । हमेशा हृदय को काबू में रखना चाहिए, न कि हृदय की काबू में ।

हमेशा सारिपुत्र को भगवान की प्रशंसा ही नहीं मिली । उन्हें भगवान की फटकार भी खानी पड़ी । आवश्यकता पड़ने पर भगवान किसी को फटकारने में आगा पीछा नहीं देखते थे । भगवान की ही आज्ञा पर सारिपुत्र ने राहुल को प्रव्रजित किया था । एक बार सारिपुत्र राहुल का ठीक ठीक ख्याल नहीं कर सकें । सोने का स्थान न मिलने के कारण राहुल को भगवान के पाखाने में रात बितानी पड़ी । [१७] इसी पर भगवान ने उन्हें दो टुक सुनाई थी ।

छः वर्गीय भिक्षु बड़े कुआख्यात थे । वे हर जगह सबसे पहले ही पहुंच विहार की शय्याओं पर अधिकार कर लेते थे । केवल अपने लिये ही नहीं बल्कि अपने आचार्यों उपाध्यायों के लिये जगह घेर लेते । एक बार उन्होंने ऐसा ही किया । उस दिन सारिपुत्र शय्या के अभाव से बाहर ही किसी वृक्ष

के नीचे सारी रात बैठे रहें। रात के भिनसार में उठकर भगवान ने खांसा तो सारिपुत्र ने भी खांसा।

"वहाँ कौन हैं ?" भगवान ने पूछा।

"भगवान मैं सारिपुत्र हूँ।"

"सारिपुत्र ! तुम यहाँ क्यों बैठे हो ?"

उन्होंने भगवान से सारी बात सुना दी। भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया–

"भिक्षुओं ! क्या छः वर्गीय भिक्षु आगे आगे जा कर विहार के कमरों और शय्याओं पर अधिकार कर लेते हैं ?"

"सचमुच भगवान !" भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान ने उन्हें धिक्कारते हुये कहा, "कैसे हैं ये नालायक भिक्षु, जो ऐसा करते हैं ? भिक्षुओं तुम्हें मालूम होना चाहिये कि प्रथम आसन, प्रथम जल, प्रथम परोसा किसके लिये है ?"

किसी ने क्षत्रिय कुल से प्रव्रजित के लिये कहा। किसी ने ब्राह्मण कुल से प्रव्रजित के लिये बताया तो किसी ने गृहपति कुल से प्रव्रजित का नाम बताया। किसी ने सूत्रधर, विनयधर और धर्मकथिक के नाम का उल्लेख किया।

उपदेश देकर भगवान ने समझाया– "भिक्षुओं संघ में जो पहले प्रविष्ट हुआ है, चाहे वह किसी भी कुल का क्यों न हो वह ज्येष्ठ है। जो पीछे प्रव्रजित हुआ है, वह कनिष्ठ है। इसी नियम के अनुसार आदर सत्कार अभिवादन, प्रथम आसन, प्रथम जल, प्रथम परोसा प्राप्त होना चाहिए।" [१८]

भगवान के बाद सारिपुत्र महान् ज्ञानी माने जाते हैं फिर भी उनमें जरा भी अहंकार नहीं था। उन पर किसी का थोड़ा भी उपकार हो वे उसे भूलते नहीं थे। प्रति उपकारके लिये तत्पर रहते। राध नाम का एक ब्राह्मण प्रव्रज्या के लिये अत्यंत उत्सुक था। उसने भिक्षुओं से प्रव्रज्या की याचना भी की। किसी कारण किसीने भी उसे प्रव्रजित नहीं किया। प्रव्रज्या न पा वह दुखी था और दुर्बल हो गया था। भगवान ने उसे देख भिक्षुओं से इसका कारण पूछा। भिक्षुओं ने भगवान को उत्तर दिया– "भन्ते ! प्रव्रज्या न मिलने से यह सूखकर पीला पड़ गया है।"

महाकारुणिक भगवान ने कहा, "भिक्षुओं तुम में से किसी को इस ब्राह्मण का कोई उपकार स्मरण है ?"

सब चुप रहे। तब सारिपुत्र बोले, "भन्ते ! मैं इस ब्राह्मण का उपकार स्मरण करता हूँ।"

"सारिपुत्र ! तुम इस ब्राम्हण का कौन सा उपकार स्मरण करते हो ?'

"भन्ते एक समय मैं राजगृह में भिक्षाटन कर रहा था। इस ने मुझे कलछी भर भात दिलवाया था।"

"साधु, साधु, सारिपुत्र सत्पुरुष कृतज्ञ कृतवेदी होते हैं। अच्छा तो सारिपुत्र तुम ही इस ब्राह्मण को प्रव्रजित और उपसंपादित करो।" सारिपुत्र ने भगवान की आज्ञा का पालन किया। [१९]

भगवान के धर्म में दीक्षित होने के पूर्व शुरुके दिनो में उन पर संजय परिव्राजक का बड़ा उपकार हुआ था। उस उपकार से मुक्त होने के लिये उन्होंने संजय को भगवान के धर्म में लाने का बहुत प्रयत्न किया था।

सारिपुत्र अश्वजित को बहुत मानते थे। एक प्रकारसे अश्वजित ही उनको मार्ग दिखाने वाले थे। सारिपुत्र उन्हें अपना द्वितीय गुरु मानते थे। जहाँ कहीं भी सारिपुत्र विहार करते हो ओर उन्हें ज्ञान हो कि अश्वजित अमुक दिशा में विहार करते हैं तो वे सोने से पहले हर रात उस दिशा को नमस्कार करते[२०] और उस दिशा में पैर कर के कभी नहीं सोते। यदि वे उसी विहार में निवास करते हो जहाँ सारिपुत्र ठहरे हैं तो भगवान से मिलने के बाद अश्वजित से बिना मिले नहीं सोते।

सुख सारिपुत्र के दाई का पुत्र था। वह सात वर्ष की उम्र में ही सारिपुत्र के पास प्रव्रजित हो गया था। एक दिन वह सारिपुत्र के साथ उनके पीछे पीछे भिक्षाटनार्थ जा रहा था। रास्ते में कई प्रकार की चीजे देख उसने उनके संबंध में सारिपुत्र से प्रश्न किये। इसके बाद उसने विहार लौट जाने की इच्छा प्रकट की। सारिपुत्र सहमत हुये। विहार लौटते वक्त उसने कहा, "भन्ते मेरे लिये स्वादीस्ट भोजन लाना। यदि अपने पुन्य प्रताप से न पा सके तो मेरे पुन्य प्रतापसे आप उसे पा सकेंगे।"

श्रामणेर विहार पहुंच शरिर की असारता पर ध्यान लगा चिन्तन करने बैठा। कुछ समय में वह अनागामी पद को प्राप्त हुआ। इस बीच सारिपुत्र, जहाँ सुख की इच्छानुसार भोजन मिल सकता था वहाँ पधारे। स्वयं भोजन करके सुख का हिस्सा ले वे विहार लौटे। [२१]

अन्य गुणों के साथ साथ दूसरों की सलाह मानने का गुण भी सारिपुत्र में था। सलाहकार चाहे छोटा ही क्यों न हो पर वे उसकी बात अवश्य सुनते।

एक बार उन्होंने लापरवाई से अपना चीवर कन्धेसे नीचे फिसलने दिया। यह देख एक श्रामणेर ने कहा, "भन्ते ! चीवर को ठीक से पहनना अच्छा है।"

सारिपुत्र ने स्वीकारते हुये कहा, "तुमने बहुत अच्छा किया जो मुझे इसका ध्यान दिलाया।" कुछ दूर जाकर उन्होंने चीवर को संवारा। [२२]

समय समय पर वे अपने सहधर्मियों से धर्म के संबंध में प्रश्न पूछते तथा वे भी सारिपुत्र की सलाह लेते। महाकोट्ठिठतने उनसे धर्म के संबंध में प्रश्न पूछे थे। [२३] इसी प्रकार विद्या और अविद्या एवं मनोविज्ञान के विषय पर सारिपुत्र ने उसे विस्तार पूर्वक उपदेश दिया। [२४] महाकाश्यप और अनुरुद्ध भी उनसे यदा कदा चर्चा करते दिखाई देते। एक जगह अनुरुद्ध उनसे अपनी हजारों दिव्य शक्तियों के बारे में कहते दिखाई देते हैं। सारिपुत्र उनसे कहते हैं कि उनकी दिव्य-दृष्टि केवल काल्पनिक है और दिव्य शक्तिवाला बताना अहंकार मात्र है। अनुरुद्ध सारिपुत्र की बात मानते हैं और अहंकार रहित हो अर्हत् पद को प्राप्त करते हैं। [२५]

एक अन्य अवसर पर महामौद्गल्यायन उनसे अकलंक व्यक्ति के बारे में प्रश्न पूछते हैं। इसका उत्तर वे भिक्षु परिषद में सुनाते है, "चार प्रकार के मनुष्य होते हैं, १ वे जो दोष होने पर भी नहीं जानते कि वे सदोष है, २ वे जो सदोष होते हुये जानते हैं कि वे सदोष हैं, ३ वे जो अदोष हुये भी नहीं जानते है कि वे अदोष हैं, ४ वे जो अदोष होते हुये जानते है कि वे अदोष हैं।" [२६]

एक बार सारिपुत्र ने राजगृह में भिक्षुओं के बीच एक अशिष्ट भिक्षु को देखा जो जंगली इलाके से आया था। वे कहते हैं, "आयुष्मानों संघ में विचरते समय आरन्यक भिक्षु को चाहिये कि वह अपने सहब्रम्हचारियों के प्रति आदर और गौरव का व्यवहार करें, योग्य आसन पर बैठे, भिक्षाटन के समय योग्य विनय का ध्यान रखें तथा धर्म-विनय का अभ्यास करते हुये अपने साध्य का ख्याल रखें। किन्तु वे इन बातों का ख्याल नहीं करते।" उनकी बात समाप्त होने पर पहामौद्गल्यायन ने उनसे पूछा, "क्या आरन्यवासी भिक्षुओं को ही इन नियमों का पालन करना चाहिये या ग्रामों निगमों में रहने वाले भिक्षुओं को भी इन नियमों का ध्यान रखना चाहिये ?"

"केवल आरन्यक भिक्षु ही नहीं बल्कि ग्राम निगमों में रहने वाले भिक्षुओं द्वारा भी इन नियमों की योग्य प्रकार से रक्षा की जानी चाहिये।" सारिपुत्र ने उत्तर दिया। [२७]

सारिपुत्र उपदान से बोध्यांग के विषय पर प्रश्न करते हैं। अन्यत्र आनंद सारिपुत्र से यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि गतिमान ज्ञान क्या है ? भिक्षुओं को नया दर्शन किस प्रकार सीखना चाहिये और पुराना दर्शन कैसे मिटाना चाहिये। इनके उत्तर में वे आनंद से प्रश्न पूछ उत्तर देते हैं जिससे वे सारिपुत्र की बड़ी प्रशंसा करते हैं।

पूर्ण मैत्राणि पुत्र, ज्ञानी कौण्डिन्य का भानजा था। उसकी ख्याति दूर दूर तक फैली हुई थी। इस विषय में सारिपुत्र ने भगवान से जानना चाहा। उन्होंने खास तौर पर कह रखा था कि पूर्ण श्रावस्ती आने पर उन्हे सूचित किया जाये। पूर्ण आने पर सारिपुत्र उससे मिलने गये। अंधवन में सारिपुत्र ने पूर्ण से प्रश्न पूछे –

"आयुष्मान् क्या भगवान के अधिन रह ब्रम्हचर्य का पालन किया जाता है ?"

"हाँ आयुष्मान्।"

"आयुष्मान् किस लिये भगवान के अधिन ब्रम्हचर्य का पालन किया जाता है। क्या शील विशुद्धि के लिये ?"

"नहीं आयुष्मान्।"

"तो क्या चित्त विशुद्धि के लिये ?"

"आयुष्मान् नहीं।"

"तो दृष्टि विशुद्धि के लिये ?"

"उसके लिये भी नहीं।"

"तो क्या फिर शंका समाधान करने के लिये ?"

"नहीं आयुष्मान्।"

"तो क्या मार्ग और दर्शन के लिये ?"

"इस के लिये भी नहीं।"

"तो क्या प्रतिपदा–ज्ञान–दर्शन के लिये ?"

"नहीं आयुष्मान्।"

"तो क्या ज्ञान दर्शन विशुद्धि के लिये ?"

"नहीं।"

"तो फिर किसके लिये भगवान के अधिन ब्रम्हचर्य का पालन किया जाता है ?"

"आयुष्मान्। अनुपादनिर्वाण के लिये भगवान के समीप ब्रम्हचर्य का पालन किया जाता है।"

पूर्ण के उत्तर से संतुष्ट हो सारिपुत्र पुनः अनुपादनिर्वाण के संबंध में जिस प्रकार प्रश्न करते हैं, पूर्ण भी उसी प्रकार उत्तर देते हैं एवं अंत में रथ की उपमा से स्पष्ट करते हैं।

चर्चाके अनंतर सारिपुत्र पूछते हैं–"आयुष्मान का नाम क्या है और आपके सब्रह्मचारी आपको किस नाम से पहचानते हैं ?"

"आयुष्मान् मेरा नाम पूर्ण हैं और मेरे सब्रह्मचारी मुझे मैत्राणि पुत्र के नाम से जानते हैं।"

सारिपुत्र पूर्ण से बहुत खुश हुये। उन्हों ने बड़ी प्रशंसा की। जब पूर्ण को यह पता चला कि उनसे प्रश्न पूछने वाले स्वयं धर्मसेनापति सारिपुत्र हैं तब पूर्ण ने उनसे क्षमा मांगी–"मैं नहीं जानता था कि स्वयं धर्मसेनापति से बात कर रहा हूँ नहीं तो इतनी धिटाई के साथ बात नहीं करता।" पूर्ण भी धर्मसेनापति से बहुत प्रसन्न हुये।[२८]

पूर्ण धर्मकथिकों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे[२९] और ज्ञानी भी थे, फिर धर्मसेनापति से हर दृष्टि से छोटे थे। अपना परिचय दिये बिना ही सारिपुत्र उनसे सामान्य जिज्ञासु की तरह प्रश्न पूछते रहें। यह उनकी महानता थी।

जिन भिक्षुओं ने सारिपुत्र से विशेष अवसर पर, समय समय चर्चा की और सलाह की, उनमें समिद्धि[३०], यमक[३१], चण्डिकापुत्र[३२] और कालुदायी[३३] भी थे।

उनसे केवल भिक्षु ही चर्चा करने नहीं आते किन्तु गृहस्थ एवं परिव्राजक भी चर्चा करने आते। गृहपतियों में अतुल[३४], नकुलपिता,[३५] धानंजाना[३६] साकला[३७] प्रमुख माने जा सकते हैं। परिव्राजको में जंबुखादक[३८], सामण्डक[३९] और मसूर[४०] थे। परिव्राजिकाओं में थी सच्चा, लीला, अववादका और बाद की भिक्षुणी[४१] पटाचारा। कुण्डलकेसी को तो उन्होंने पराजित कर भिक्षुणी बनाया था। वह राजगृह के श्रेष्ठी की पुत्री थी। एक दिन पुरोहित पुत्र संतुक चोरी के अपराध में राजपुरुषों द्वारा वध करने ले जाया जा रहा था। कुण्डलकेसी ने उसे देखा। उसी समय उसे उससे प्रेम हो गया। वह उसके बिना जी नहीं सकती थी। उसने अपने पिता से याचना की। पुत्री के प्रेम ने पिता को द्रवित किया। किसी तरह उस चोर को छुडा पिता ने दोनों का विवाह कर दिया। कुछ दिन पश्चात वह पत्नी को पूजा के बहाने एक पर्वत पर ले गया। वहाँ उसने जेवर उतरवाकर पत्नी को मारना चाहा। कुण्डलकेसी प्रत्योत्पन्नमति थी। वह रहस्य को समझ गई। इस समय तक वह पति भक्ति से लदी हुई थी, पर अब उसकी अंदर की नारी जाग उठी। उसने कूटनीतिका सहारा लिया। मरने से पहले उसने पतिसे प्रदक्षिणा करने की याचना की। पति मान गया। सिर झुकाये हाथ जोडे वह पतिकी प्रदक्षिणा करने लगी। दो चक्कर और लगाने थे कि उसने पतिकी कमर पर जोरका धक्का दिया और दूसरे ही क्षण वह पर्वत की चोटी से नीचे गिरा। वह पिता के घर नहीं जा सकती थी। वह किसी आश्रम में जा परिव्राजिका बन गयी।

वह उपदेश करने ग्राम नगर घुमती । वह जहाँ भी जाती वहाँ एक झण्डी गाड़ कहती कि जिसको उससे वाद करना हो वही इस झण्डी को उखाडे । एक दिन सारिपुत्र ने झण्डी देखी । बच्चों को कह कर उन्हों ने उखडवाया । जान कर कुण्डलकेसी बड़ी जमात को लेकर सारिपुत्र के पास जेतवन पहुंची । सारिपुत्र ने उससे प्रश्न पूछने को कहा। जबतक वह पूछती रही तबतक सारिपुत्र उत्तर देते रहे । उसके चुप होने पर उनकी बारी थी । सारिपुत्र ने पहला ही सवाल किया–

'एकनाम की क्या वस्तु है ?' [४२]

वह इस प्रश्नका उत्तर नहीं दे सकी । उसने हार मानी और सारिपुत्र के आदेश पर भगवान के पास गई । भगवान ने उपदेश दिया कि अर्थविहीन एक हजार गाथायें याद करने से अर्थ युक्त एक गाथा याद करना हितकर है । उससे चित्तको शांति मिलती है । वह अंतमें प्रव्रजित हुई । [४३]

सारिपुत्र ने भिक्षुओं को कई उपदेश दिये थे । [४४] वे उपदेश बादमें भगवान के उपदेश के आधार पर सूत्र बने [४५] जिनमें दसुत्तर और संम्मीति सूत्र अधिक प्रसिद्ध है ।

एक समय भगवान गंधकुटी के [४६] आंगण परिवेण में बिछे आसन पर विराजमान थे । उनके चारों ओर भिक्षु थे । भगवान ने उन्हें संबोधित किया– "भिक्षुओं ! अब मैं वृद्ध, ५६ वर्ष का हो चला । अब स्थाई उपस्थाक की जरूरत है । पहले कई उपस्थाक आज्ञाकारी नहीं निकले थे ।"

सारिपुत्र ने कहा, "भन्ते मैं भगवान की सेवा करूंगा ।"

भगवान बोले, "नहीं सारिपुत्र ! जिस दिशा में तुम जाते हो फिर उस दिशा में मेरी आवश्यकता नहीं रहती । तुम्हारे उपदेश तथागत के उपदेश के समान है इस लिये सारिपुत्र मुझे तुम्हारी सेवा नहीं चाहिए ।"

यह कार्य आनंद ने स्विकारा [४७] यद्यपि सारिपुत्र सब भिक्षुओं से समान रूप से व्यवहार करते थे पर आनंद और मौद्गल्यायन से कुछ विशेष ही लगाव था । मौद्गल्यायन उनके बचपन के साथी थे । जिस प्रकार से वे भगवान की सेवा करना चाहते थे ठीक उसी प्रकार की सेवा आनंद कर रहे थे । इस कारण वे आनंद से विशेष लगाव रखते । आनंद भी उनका बड़ा आदर करते थे । यह भगवान द्वारा सारिपुत्र के संबंध में पूछे गये प्रश्न से विदित होता है ।

भगवान श्रावस्ती के जेतवनाराम में थे । [४८] आयुष्मान आनंद उनके पास जा अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । उन्हों ने आनंद से पूछा, "आनंद तुम्हे सारिपुत्र अच्छे लगते हैं ?"

आनंद बोले– " भन्ते ! ऐसा कौन मूर्ख, दुष्टचित्त, मूढ़ है, जिसे सारिपुत्र अच्छे नहीं लगते ? भन्ते आयुष्मान् सारिपुत्र पण्डित है, महाप्रज्ञावान है. . . . अल्पेच्छुक है, निर्विकल्प है, प्रयन्नशील है, वक्ता हैं । ऐसे सारिपुत्र, भन्ते किसे अच्छे नहीं लगते ?" [४९]

" आनंद ऐसा ही है । जो कुछ तुमने कहा मैं उसका समर्थन करता हूँ ।"

राहुल के प्रति भी सारिपुत्र को विशेष प्रेम था । वे सिद्धार्थ के पुत्र और स्वयं उनके शिष्य थे । उन्हीं ने राहुल को आनापानसति भावनाका बड़े चावसे अभ्यास कराया था । [४९]

वे राहुलमाता का भी विशेष ख्याल करते थे । वह एक बार पेट की बीमारी से पीडित थीं । राहुल ने सारिपुत्र से सलाह की । उन्हों ने राहुलमाता के लिये आमका रस प्राप्त किया । एक अन्य अवसर पर राहुलमाता के बीमार होने से सारिपुत्र ने उनके लिये राजा पसेनजित से घी मिश्रित चावल और लाल मछली प्राप्त की थी ।

वे अनाथपिण्डिक का भी ध्यान रखते थे । बाद में उनकी बीमारी की अवस्था में सारिपुत्र आनंद के साथ उन्हें देखने गये थे और उन्हे उपदेश दिया था । [५०] एक बार वे केवल चित्र गृहपति को देखने मच्छिकासंड गये थे । [५१]

सारिपुत्र धर्म सेनापति होने के कारण संघ में एकता बनाये रखने की उन पर जबाबदारी थी । एक बार देवदत्त संघ में फूट डालकर कुछ भिक्षुओं को फुसला ले गया था । सारिपुत्र मौद्गल्यायन के साथ वहाँ गये और उन्हे समझा कर लौटा लाये ।

एक बार भगवान कौशांबी के भिक्षुओं से असंतुष्ट हो श्रावस्ती चले गये । भगवान का कहना न मानने वाले भिक्षुओं का वहाँ के गृहपतियों ने बहिष्कार किया । तब सब भिक्षु अपना अपना आसन समेट पात्र चीवर ले भगवान से क्षमा मांगने श्रावस्ती गये । यह सारिपुत्र को ज्ञात हुआ तो वे भगवान के पास जा बोले, " भन्ते ! कौशांबी के झगडालू भिक्षु, श्रावस्ती आ रहे हैं । मैं उनसे कैसे बरतू ?"

" सारिपुत्र अधर्मवादी के कुछ लक्षण हैं । वह धर्म को अधर्म कहता है, और अधर्म को धर्म; विनय को अविनय कहता है तथा अविनय को विनय; तथागत द्वारा भाषित को अभाषित कहता है एवं अभाषित को भाषित; सारिपुत्र तुम इन लक्षणों से पहचानो कि कौन धर्मवादी है और कौन अधर्मवादी ।" [५२]

संघ में कुछ ऐसे भी भिक्षु थे जो सारिपुत्र से अप्रसन्न रहा करते थे । एक बार भगवान सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सहित पांच सौं भिक्षुओं को लेकर

श्रावस्ती से कीटागिरि [५३] की ओर चल दिये। अश्वजित और पुणर्वसू ने मंत्रणा की–"आवुसो ! सारिपुत्र और मौद्गल्यायन की नियत अच्छी नहीं है। ये दोनों पापेच्छूक हैं। हमें चाहिये कि हम उन्हें शयनासन न दें। इस लिये आओ हम सब सांधिक वस्तुओं का बटवारा करें।" उन्हों ने सांधिक संपत्ति आपस में बांट ली। भगवान कें कीटागिरि पहुंचने पर अन्य भिक्षुओं ने उन्हें भगवान के आगमन की सूचना दी।

अश्वजित और पूणर्वसु ने कहा, "आवुसो ! यहाँ सांघिक शयनासन नहीं हैं। हमने सभी वस्तुओं का बटवारा किया है। भगवान का स्वागत है। वे आये, चाहे जिस विहार में ठहरें। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन पापेच्छूक हैं। हम उन्हें शयनासन नहीं देंगे।"

भिक्षुओं ने जाकर भगवान से कहा।

भगवान ने धिक्कार कर उपदेश दिया, "भिक्षुओं पांच वस्तुएँ अविभाज्य हैं। न उन्हें संघ ही बांट सकता है न व्यक्ति ही। जो उनका बटवारा करता है वह दोषी है। कौनसी पांच ? आराम या विहार वस्तु, २ विहार, ३ मंच, पीठ, गद्दा, तकिया.... ४ लोह कुम्भ, ५ बल्ली, बांस मुंज आदि।" [५४]

भगवान द्वारा विज्ञापित नियमों का सारिपुत्र अक्षरशः पालन करने में कभी नहीं चुकते। कुछ समय बाद भगवान ने एक भिक्षु द्वारा एक ही श्रामणेर को दीक्षित करने का नियम बताया था। जिस परिवार का सारिपुत्र पर बड़ा उपकार हुआ था ऐसे परिवार से उनके पास एक पुत्र प्रव्रजित कराने भेजा गया। सारिपुत्र ने इनकार कर दिया। जब तक भगवान ने उस नियम को नहीं बदला तबतक उन्हों ने उसे दीक्षा नहीं दी। इसी प्रकार भगवान ने ल्हसून न खाने का नियम बनाया था। जब सारिपुत्र बीमार पड़े तो उन्हों ने ल्हसून नहीं खाया जब कि वे जानते थे कि ल्हसून खाने से ही उनकी बीमारी दूर होती है। भगवान की अनुमति के पश्चात ही उन्हों ने ल्हसून खाया।

अन्य गुणों के साथ साथ उनमें सेवाभाव भी एक बड़ा गुण था। एक बार वे एक विहार में ठहरे हुये थे। वहाँ के सब भिक्षु भिक्षाटन के लिये चले गये। लौटने पर वे उन्हें दोष न दें इस कारण उन्हों ने सारे विहार की सफाई की, मटकों में पानी भरा और आसन बिछा कर रख दिये। इतना करने पर भी उन पर लालची होने का दोषारोपन किया गया था। भगवान ने समझाया कि सारिपुत्र निर्दोष है। [५५]

स्वयं भगवान रोगी भिक्षुओं को देखने जाया करते थे। उसी प्रकार रोगियों को देखने जाना और उनकी सेवा करना सारिपुत्र का नियम सा बन गया था। [५६]

सारिपुत्र हमेशा किसी भिक्षु की सफलता पर प्रसन्न होते थे और उसे प्रकट करते थे। मौद्गल्यायन की ऋद्धि प्राप्ति पर प्रसन्नहो उनकी बड़ी प्रशंसा की थी। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं।

किसी भी बात का निश्चय करने पर वे उसे अंत तक निभाते। उन्हें अपूप बहुत प्रिय थे। एक बार उन्हें भिक्षा में अपूप मिले। अपना हिस्सा ग्रहण कर अपने अंतेवासी का हिस्सा बचा रख छोड़ा। उसे आने में देर हो रही थी और खाने का समय बीत रहा था तो उन्होंने बचे अपूप स्वयं ही खा लिये। अन्तेवासी के आनेपर उन्हों ने इस का जिक्र किया तो बिना सोचे श्रामणेर ने कह दिया, "भन्ते मीठा किसे अच्छा नहीं लगता?" उस दिन से सारिपुत्र ने अपूप खाना छोड़ दिया और उसे जीवनभर निभाया।

कहा जाता हैं कि एक बार रात्रि के समय कोई यक्ष आकाश मार्ग से जा रहा था। सारिपुत्र का मुण्डन किया हुआ सिर देख कर यक्षको आश्चर्य हुआ। सारिपुत्र ध्यान लगाये बैठे थे। साथियों के मना करने पर भी उस यक्ष ने उनके सिर पर प्रहार किया। माना जाता हैं कि वह प्रहार पर्वत को भी कंपन करने वाला था। किन्तु बाद में सारिपुत्र को थोड़ा सिर दर्द हुआ था। [५७]

सारिपुत्र दो बार बीमार पड़े थे। एक मर्तबा उन्हें बुखार हो आया था। उसके लिये महामौद्गल्यायन मंदाकिनी सरोवर से कमल-णाल ले आये थे। [५८] दूसरे अवसर पर पेट का दर्द हुआ था। इस बार भी मौद्गल्यायन ने ही उन्हें ल्हसून की दवाँ दी थी।

बेळुवग्राम में अंतिम वर्षावास बिता भगवान श्रावस्ती लौटे। वहीं अंतिम बार सारिपुत्र भगवान से मिलें। भगवान के प्रति उन में असीमित श्रद्धा थी। उसे उन्हों ने अपने सिंहनाद में व्यक्त किया है।

सारिपुत्र जानते थे कि सात दिन के बाद उनका अवसान काल आने वाला है। अपनी माता से मिलने का उन्होंने निश्चय किया। यद्यपि वह सात अर्हतों की जननी थी तो भी वह भगवान कें धर्म में विश्वास नहीं करती थी। इस का कारण था उसके सारे पुत्र पुत्रियाँ विशाल धन राशी का त्याग कर प्रव्रजित हो गये थे। कहा जाता हैं कि पहले एक बार जब सारिपुत्र गांव गये तो उनकी माता ने उन्हें और उनके साथियों को खूब गाली दी थी तब राहुल भी उनके साथ थे। [५९]

नाळकग्राम की यात्रा की तयारी करने उन्हों ने अपने भाई चुन्द से कहा। सारिपुत्र ने हमेशा के लिये भगवान से विदा ली। श्रावस्ती के महाद्वार तक विशाल जनकाय उन्हें विदा करने गया। वहाँ सारिपुत्र ने उन्हें उपदेश दिया और वहीं से लौट जाने का अनुरोध किया।

इस यात्रा में उनके साथ पांच सौं भिक्षु थे । सातवें दिन वे नाळकग्राम पहुंचे। ग्राम द्वार पर उनका भानजा भिक्षु उपरेवत प्रतीक्षा कर रहा था। सारिपुत्र ने यह कह कर उसे माता के पास भेजा कि सारिपुत्र बड़ी जमात के साथ आये हैं। पुत्र अंतमें गृहस्थ जीवन स्वीकार करने आया सोच उनके साथियों की हर प्रकार की व्यवस्था की। जिस कमरे में सारिपुत्र का जन्म हुआ था वे वहीं ठहरे। वे वहाँ बीमारी से पीड़ित हुये। माता बीमारी से अनभिज्ञ थी। उसे इस बात का गुस्सा था कि उसका पुत्र अभी भी चीवर धारी ही है। वह अपने कमरे में रही। जब उसने देखा कि उसके इष्ट देवता उसके पुत्र की सेवा में उपस्थित हुये हैं तो वह सारिपुत्र के पास गई और पूछा कि क्या सचमूच वह उन देवताओं से श्रेष्ठ है? सारिपुत्र के स्वीकार करने पर वह खुशी से फुली न समाई। उन्होंने माता को उपदेश दिया जिससे वह श्रोतापन्न हो गई।

सारिपुत्र ने अनुभव किया कि वे माता के ऋणसे मुक्त हुये। भिक्षुओं को बुला लाने के लिये उन्हों ने चुन्द को भेजा। भिक्षुओं के आने पर वे चुन्द की मदद से तकिये के सहारे बैठ गये। उन्हों ने विनम्र हो पूछा–" आयुष्मानों मेरे भिक्षु जीवन के चौव्वालीस वर्षों में मैंने किसी प्रकार आयुष्मानों के प्रति अन्याय तो नहीं किया? आयुष्मानों को अप्रसन्न तो नहीं किया?" उन भिक्षुओं का उत्तर सुन उन्हें संतोष एवं विश्वास हुआ कि वे हर प्रकार से निर्दोष हैं। वे आराम से लेट गये और कई प्रकार की समाधियों में से गुजर कर अंतिम श्वांस ली। वे परिनिर्वाण को प्राप्त हुये।

उनकी माता ने दाहसंस्कार की सारी तैयारी कराई। दाहसंस्कार के उपरांत अनुरुद्ध स्थविर ने सुगंधित जल से चिता को शान्त किया और चुन्द ने सारिपुत्र के शरीर के भस्मावशेष इकट्ठे किये।[६०]

सारिपुत्र का देहांत कार्तिकी पूर्णिमा के दिन हुआ था। इसके दो सप्ताह बाद महामौद्गल्यायन भी महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुये थे। सारिपुत्र मौद्गल्यायन दोनों उम्र में भगवान से बड़े थे।[६१]

सारिपुत्र की अस्ति और पात्र चीवर लेकर चुन्द श्रावस्ती गये। सबसे पहले उन्हों ने आनंद को सारिपुत्र के देहावसान का समाचार दिया। सुन कर आनंद को बहुत ही दुःख हुआ।[६२] दोनों भगवान के पास गये। समाचार सुन भगवान ने वस्तुओं के अनित्यता धर्मका उपदेश दिया।

सारिपुत्र के कई शिष्य थे जिन में कुछ का उल्लेख आ चुका है। अन्य शिष्य थे--कोसिय, कंधदिन्न, चुल्लसारि, वनवासिक तिष्य, संकिच्च और सरभू। सारिपुत्र धर्म के विशेषज्ञ माने जातें थे। उन्हों ने इस विषय में पांच सौं

भिक्षुओं को तैयार किया था। इस प्रकार सारिपुत्र से ही अभिधर्म की परंपरा चली आई।[६३]

---

१. धम्मपद अट्ठकथा भाग ५ पी टी एस्।
२. मज्झिमनिकाय भाग ३ पी टी एस्।
३. संस्कृत ग्रंथों में उनका नाम सारिपुत्र, शालिपुत्र, शारिसुत और शारद्वतिपुत्र आता है।
४. धम्मपद अट्ठकथा १८८ पी टी एस्।
५. महावग्ग–विनयपिटक पृ. ३९।
६. वहीं पृ. ४०।
७. वहीं पृ. ४१।
८. मज्झिमनिकाय।
९. धम्मपद अट्ठकथा, थेरगाथा अट्ठकथा, मज्झिमनिकाय अट्ठकथा, अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा।
१०. सच्चविभंग सुत्त–मज्झिमनिकाय।
११. महागासिंग सुत्त–मज्झिमनिकाय।
१२. अंगुत्तरनिकाय १, २३ पी टी एस्।
१३. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा २, ४५ पी टी एस्।
१४. संयुत्तनिकाय १, १९१।
१५. मज्झिमनिकाय ३ २९।
१६. महाहत्थिपदोपम सुत्त–मज्झिमनिकाय।
१७. जातक ११६१।
१८. महावग्ग विनयपिटक।
१९. वहीं।
२०. धम्मपद अट्ठकथा ४, १५० पी टी एस्।
२१. धम्मपद अट्ठकथा ३, ९५ पी टी एस्।
२२. थेरगाथा अट्ठकथा २, ११६ पी टी एस्।
२३. संयुत्तनिकाय २, ११२ पी टी एस्।
२४. महावेदल्ल सुत्त–मज्झिमनिकाय।
२५. अंगुत्तरनिकाय १, २८१ पी टी एस्।

२६. अनंगन सुत्त–मज्झिमनिकाय ।

२७. गोसिंग सुत्त–मज्झिमनिकाय ।

२८. रथाविनीता सुत्त–मज्झिमनिकाय ।

२९. अंगुत्तरनिकाय १. २३ पी टी एस् ।

३०. अंगुत्तरनिकाय ४. ३८५ पी टी एस् ।

३१. संयुत्तनिकाय ३. १०९ पी टी एस् ।

३२. अंगुत्तरनिकाय ४. ४०३ पी टी एस् ।

३३. अंगुत्तरनिकाय ४. ४१४ पी टी एस् ।

३४. दीघनिकाय अट्ठकथा ३. ३२७ पी टी एस् ।

३५. संयुत्तनिकाय ३. २ पी टी एस् ।

३६. मज्झिमनिकाय २. १८६ पी टी एस् ।

३७. जातक १. ४०४ पी टी एस् ।

३८. संयुत्तनिकाय ४. २५१ पी टी एस् ।

३९. संयुत्तनिकाय ४. २६१ पी टी एस् ।

४०. सुत्तनिपात अट्ठकथा २. ५३८. पी टी एस् ।

४१. जातक ३. १ पी टी एस् ।

४२. शायद इसका अर्थ जो सबके लिये उपयुक्त और आवश्यक हो ऐसा एक सत्य वस्तु रही होगी ।

४३. दीघनिकाय अट्ठकथा २. २३३ पी टी एस् ।

४४. संयुत्तनिकाय ।

४५. मज्झिमनिकाय ।

४६. जेतवन श्रावस्ती में भगवान के रहने की कूटी ।

४७. देखो आनंद चरित्र ।

४८. बुद्ध और उनके अनुचर पृ. ३४ भदंत आनंद कौसल्यायन ।

४९. राहुलोवाद सुत्त–मज्झिमनिकाय ।

५०. अनाथपिण्डिको वाद सुत्त–मज्झिमनिकाय ।

५१. दीघनिकाय अट्टकथा ।

५२. महावग्ग–विनयपिटक ।

५३. बनारस अयोध्या साकेत के रास्ते पर वर्तमान केराकत जैनपुर या उसके आसपास का कोई स्थान रहा होगा ।

५४. चुल्लवग्ग–विनयपिटक ।
५५. धम्मपद अट्ठकथा ।
५६. संयुत्तनिकाय २. २७५ पी टी एस् ।
५७. उदान ।
५८. विनयपिटक ।
५९. दीघनिकाय १. २१४ पी टी एस् ।
६०. संयुत्त निकाय अट्ठकथा ३. १७२ पी टी एस् ।
६१. धम्मपद अट्ठकथा १. ७३ पी टी एस् ।
६२. देखो आनंद चरित्र ।
६३. अत्थसालिनी पी टी एस् ।

★

अन्य लोक के यात्री

★

महामौद्गल्यायन

(ई. पू. ५२७)

★

उनका जन्म राजगृह के समीप कोलित गांव में हुआ था। जिस दिन सारिपुत्र जन्में वे भी उसी दिन पैदा हुये। गांव ही के नाम पर उनका नाम कोलित पड़ा। उनकी माता (मोग्गली) मोग्गलानी थी। पिता गांव में मुख्य माने जाते थे।

प्रव्रज्या [१] के कुछ ही समय बाद भगवान ने सारिपुत्र को प्रधान धर्म सेनापति और मौद्गल्यायन को द्वितीय धर्मसेनापति घोषित किया। इससे अन्य भिक्षुओं की कोई प्रतिक्रिया न हो इस कारण भगवान ने भिक्षुओं को उपदेश देकर वे इस पद के योग्य है, समझाया। [२]

एक स्थान [३] पर भगवान ने दूसरे भिक्षुओं से पृथक करते हुये दोनों को जुड़वा भाई कहा है। [४] सारिपुत्र चार आर्यसत्यों को पढ़ाने में और समझाने में विशेष समर्थ थे। दूसरी ओर मौद्गल्यायन अपनी ऋद्धिप्रातिहार्य द्वारा शिक्षा देने में विशेष निपून थे। [५]

महामौद्गल्यायन ऋद्धिबल से प्राणियों को कई गुणा घटा बढ़ा सकते और अपने आपको चाहे जिस रूप में परिवर्तित कर सकते थे। कहा जाता है कि वे सेम की फल्ली के समान सुमेरु को दबा सकते थे और चटाई की तरह पृथ्वी को अपनी उंगलियों द्वारा लपेट सकते थे तथा कुंभार के चक्के के समान उसे घुम ले सकते थे। [६]

एक बार भगवान के कहने पर मौद्गल्यायन ने अपने अंगुठे से मिगार-मातुप्रासाद को हिलाया जिससे भूकंप के समान शब्द हुआ। उसी में फर्स पर बैठे कुछ भिक्षु बेकार की बाते कर रहे थे, यह जानते हुये भी कि भगवान ऊपर के तल्ले पर विराजमान हैं। उन्हीं भिक्षुओं को डराने के लियें मौद्-गल्यायन ने ऐसा किया था। [७]

महामौद्गल्यायन ऋद्धिबल से दूसरे दूसरे लोक में जाया करते थे। एक समय वे शक्र के पास यह देखने गये कि भगवान की शिक्षा के लिये उनके मन में

कितना आदर है। उन्होंने इन्द्र को बड़ा अभिमानी और कामभोग में मस्त पाया। उन्होंने उसका वैजयंत महल झकझोर दिया। डरके मारे इन्द्र कापने लगा। उसका सारा अभिमान चूर चूर हो गया। उस वक्त भगवान श्रावस्ती में मिगारमातुप्रासाद में ठहरे हुये थे। इन्द्र ने मिगारमाता के पूर्वाराम को नीचा दिखाते हुये अपने वैजयंत प्रासाद की बढ़ाई की। मौद्गल्यायन ने अपने पैरके अंगुठे की ठोकर से इन्द्र के महलको हिला दिया।[८] इसी प्रकार वे एक बार ब्रम्हलोक गये। वे बक ब्रम्हा का मिथ्या विश्वास दूर कराने में भगवान की मदद करना चाहते थे। मौद्गल्यायन के आगमन के बाद बक ब्रम्हाको मानना पड़ा था कि उसकी पूर्व धारणा गलत थी।[९]

एक बार मार ने मौद्गल्यायन के पेट में घुस कर बड़ा हैरान किया था। वे उस वक्त भग्ग में सुसुमारगिरि में सकलवन-मृगदाय में विहार करते थे। रात को खुले आकाश में जब टहल रहे थे तो उसी समय मौका पाकर उनकी कुक्षी में प्रवेश किया। उनको लगा कि पेट जैसे फूलता जा रहा है। वे विहार के अंदर जा बिछे आसन पर बैठ गये। उन्होंने मार को देखा और पहचाना। बाहर निकलने की आज्ञा दी- "पापी मार बाहर निकल।"

मार ने सोचा- "मुझे बिना जाने, देखे यह कह रहा है, इनके शास्ता भी मुझे जल्दी नहीं जान पाते तो यह कैसे जान सकता है।"

मौद्गल्यायन ने मार से पुनः कहा, "पापी मार तू यह मत समझ कि मैं तुझे नहीं जानता।"

तब मार यह सोच बाहर निकल आया कि यह मुझे जान गया। सामने मार को देख उन्हों ने कहा, "हें पापी मार पहले इदूसी नाम का मार था। इदूसी की काली नाम की एक बहन थी। तू उसीका पुत्र है। इस कारण तू मेरा भानजा हुआ।[१०]

मौद्गल्यायन का सब से बड़ा ऋद्धि प्रातिहार्य नंदोपनंद नाग का पराभव करने वाला था। इस कार्य के लिये दूसरा कोई भी भिक्षु योग्य नहीं था। क्यों कि मौद्गल्यायन की तरह तुरंत चौथे ध्यान में प्रविष्ट होना किसी के सामर्थ्य की बात नहीं थी। इसी कारण भगवान ने मौद्गल्यायन को ही चुना था।[११]

जो चीजें किसी भिक्षुको ध्यान लगाने पर भी नहीं दिखाई देती उन्हें मौद्गल्यायन बिना ध्यान लगाये ही देख सकते थे।[१२] वे विभिन्न लोक में जाते थे और वहाँ के निवासियों के बारे में भगवान से आकर कहते। उन बातों का उपयोग भगवान अपने उपदेश में करते। अन्य लोक में किस प्रकार यात्रा करते थे उनका वर्णन पालि ग्रंथों में दिया गया है।[१३]

यद्यपि ऋद्धिबल उनकी सब से बड़ी विशेषता थी परंतु ज्ञान में भी वे

सारिपुत्र से कम न थे। भगवान के ये दो शिष्य ऐसे थे जो किसी भी प्रश्न का उत्तर क्रमसे और विस्तृत रूपसे दे सकते थे। [१४]

ऐंसे कई अवसर पाये जाते है जब भगवान ने मुक्त कंठ से मोद्‌गल्यायनकी प्रशंसा की। एक समय भगवान कपिलवस्तु में विहार करते थे। वहाँ उन्हों ने शाक्यों को उपदेश दिया। शाक्यों के चले जाने पर भगवान विश्राम करना चाहते थे। उन्हों ने भिक्षुओं को उपदेश देने की उन्हें आज्ञा दी। मोद्‌गल्यायन ने इच्छा और उस से मुक्ति के संबंध में उपदेश दिया। उपदेश के समाप्ति पर भगवान ने उनकी भूरी भूरी प्रशंसा की थी। [१५]

जिस समय माता को अभिधर्मका उपदेश देने भगवान तांवतिस लोक गये थे तब मोद्‌गल्यायन ही थे जिन्होंने भगवान के लौट आने तक लोगों को उपदेश दिया था। भगवान के आनेतक इकट्‌ठे लोगों की भौतिक आवश्यकतायें अनाथपिण्डिक ने पूरी की थी। [१६]

भगवान द्वारा बताया गया ऐसा कोई भी कार्य नहीं था जिसे मोद्‌गल्यायन नहीं कर सकते थे। भगवान की आज्ञा होते ही वे उस काम को कर डालते। वे इस कारण अपने को भाग्यशाली समझते। एक मर्तबा भगवान अर्हत्‌ उग्रसेन को देखना चाहते थे। उन्हें बुलाने के लिये उन्हों ने मोद्‌गल्यायन को भेजा था। इस प्रकार भगवान ने उन्हें सक्खर, मच्छरिय, कोसिक की सुविधा असुविधा की परीक्षा करनें भेजा था। [१७]

सारिपुत्र मोद्‌गल्यायन पर भगवान की बडी आस्था थी। भगवान ने संघ को पवित्र रखने का पूरा अधिकार और संघ का सारा उत्तरदाईत्व उन दोनों को सौंप दिया था। एक बार मोद्‌गल्यायन ने एक दुष्ट भिक्षु को कमरे से बाहर कर दिया और द्वार बंद किया।

बिना कारण ही एक समय एक भिक्षु ने सारिपुत्र पर दोषारोपन किया था। उस वक्त किसी यात्रा के लिये रवाना होने वाले थे। मोद्‌गल्यायन और आनंद हर कमरे में जा भिक्षुओं को इकट्‌ठा करने लगे ताकि वे उस का फैसला स्वयं सारिपुत्र से ही सुन लें। [१८]

राहुल की प्रव्रज्या में सारिपुत्र उनके उपाध्याय और मोद्‌गल्यायन आचार्य बने थे। एक स्थल पर मोद्‌गल्यायन को राहुल का कर्मवाचाचार्य बताया गया है। [१९]

मोद्‌गल्यायन में विशेष श्रद्धा रखने वालों में तिष्य, वड्‌ढमान और पोट्‌ठिल मुख्य थे। उन्हों ने गाथाओं में मोद्‌गल्यायन की बड़ी प्रशंसा भी की है। [२०] वे तीनों एक समय पांच सौं भिक्षुओं के साथ कालशीला पर ठहरे हुये थे। अर्हत्‌ पद प्राप्ति करने तक वे सबकी देख भाल करते रहे। उनका यह कार्य

स्वयं वंगीस ने देखा था। उन्हों ने इस संबंध में भगवान के पास मौद्गल्यायन की खूब तारीफ की।[२१]

सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के बीच असीम और स्वाभाविक प्रेम था। मौद्गल्यायन की तारीफ में कही गई सारिपुत्र की गाथाओं की अपेक्षा सारिपुत्र की स्तुति में कही गई मौद्गल्यायन की गाथा अधिक प्रभावशाली हैं। दोनों मित्रों में अक्सर किसी गंभीर विषय पर चर्चा होती रहती थी।

एक समय सारिपुत्र मौद्गल्यायन के पास गये। कुशल क्षेम पूछ आसनपर बैठे। सारिपुत्र ने उनसे पूछा– "आयुष्मान्! दुःखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धी; दुःखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धिः, सुखपूर्ण साधना विलंबित सिद्धि, सुखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि, ये चार प्रतिपदायें हैं। इन चारों प्रतिपदाओं में से किस प्रतिपदा के अनुसार जीवन यापन करने से आपका चित्त आश्रवों से मुक्त हुआ?"

मौद्गल्यायन उत्तर देते हैं– "आयुष्मान् इन चारों प्रतिपदाओं में से जो यह दुःखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि वाली प्रतिपदा है इसी के अनुसार जीवन यापन करने से मेरा चित्त आश्रवों से मुक्त हुआ।"

एक अन्य अवसर पर यही प्रश्न मौद्गल्यायन सारिपुत्र से पूछते हैं। वे उसका उत्तर भिन्न प्रकार से देते हैं। वे कहते हैं– "आयुष्मान। इन चारों प्रतिपदाओं में से जो यह सुखपूर्ण साधना क्षिप्र सिद्धि वाली प्रतिपदा है उसके अनुसार जीवन यापन करने से मेरा चित्त आश्रवों से मुक्त हुआ।"[२२]

दोनों के हृदय में भगवान के प्रति असीमित प्रेम एवं भक्ति थी। जब वे भगवान से कहीं दूर होते तो वे भगवान के साथ हुई बाते और चर्चा के संबंध में एक दूसरे से कहते।

एक समय भगवान गोसिंगशालवन में विहार करते थे। उनके साथ प्रधान शिष्यों में से कई थे। शाम के वक्त सब प्रधान शिष्य मिलकर भगवान के पास पहुंचे और गोसिंगशालवन के शोभायमान होने का यथार्थ कारण पूछा। भगवान से उत्तर सुन वे संतुष्ट हुये।[२३]

साकेत के केतकी वन की बात है। सारिपुत्र, मौद्गल्यायन और अनुरुद्ध वहाँ ठहरे थे। अनुरुद्ध और मौद्गल्यायन के बीच स्मृति प्रस्तान के विषय पर देर तक चर्चा होती रही। विशेषत: अनुरुद्ध ही इस विषय पर अपने अनुभव सुना रहे थे।

सारिपुत्र के साथ यात्रा करते समय दोनों ही अन्य भिक्षुओं का नेतृत्व करते थ। भिक्षुओं को दान देने वाले गृहपति दोनों को ही सामिल करने के लिये हमेशा आतूर रहते। दक्षिणगिरि की वेळुकण्डकी और मच्छिकासंद का चित्रगृहपति इसके उदाहरण माने जा सकते हैं।

वेळुकण्डकी वेळुकण्ड ग्राम की रहने वाली थी। उसे आदर्श बौद्ध महिला बताया गया है।[२४] भिक्षुओं का दोनो नेतृत्व करते। वे भिक्षु उसे बहुत प्रिय लगते थे। वह उन्हें दान देने में अपना सौभाग्य समझती थी। एक बार दोनों भिक्षु समूह के साथ वेळुकण्ड ग्राम की ओर जा रहे थे। यह समाचार सुन वह बहुत खुश हुई। उसने हर प्रकार की व्यवस्था की और विहार निमंत्रण भेजा। भिक्षुओं ने उसके घर भोजन किया। उसका एक मात्र पुत्र नंद राजपुरुषों द्वारा उसकी आँखों के सामने ही मारा गया था। फिर भी उसने आह तक नहीं की। उसके बारे में कहा जाता है कि उसे सारा त्रिपिटक कंठस्थ था।[२५]

मोद्गल्यायन के शरीर का वर्ण नीले कमल के समान बताया जाता है।[२६] आज भी लंका जैसे बौद्ध देश में उनकी प्रतिमा नीले रंग की बनाई जाती है।

सारिपुत्र के कई भाई बहनों का उल्लेख आता है परंतु मोद्गल्यायन के पिता के परिवार के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

भगवान के महापरिनिर्वाण के पहले ही महामोद्गल्यायन ने प्रयाण किया पर सारिपुत्र के बाद / उनके देहांत पर कही गई मोद्गल्यायन की कई गाथायें उपलब्ध हैं।[२७] मोद्गल्यायन का देहांत कार्तिकी अमावस के दिन हुआ था।

उनकी हत्या निगंठों ने की थी। वे लोग मोद्गल्यायन से बड़े गुस्से थे। इसी कारण उन्हें मारने का षड़यंत्र रचा गया। कई बार मोद्गल्यायन उनकी चंगुल से भाग गये थे। वे कालशीला पर एकांत में रात्रि का समय बिताया करते। वहीं उन्हें पकड़ कर निगंठों ने खूब पीटा। उनकी हड्डी चूर चूर हो गई थीं। होश आने पर बड़ी ही कठिनाई से भगवान के पास विदा लेने गये। वहीं उनके पास उन्होंने प्राण छोड़ा।

---

१. प्रव्रज्या तक की कथा के लिये देखें सारिपुत्र चरित्र।

२. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा १.८४ पी टी एस्।

३. सच्चविभंग सुत्त– मज्झिमनिकाय।

४. देखें सारिपुत्र चरित्र।

५. बुद्धवंस अट्ठकथा।

६. दीघनिकाय अट्ठकथा ३. २१२. पी टी एस्।

७. पासादकम्पन सुत्त–संयुत्तनिकाय।

८. चूळतण्हासंखय सुत्त–मज्झिमनिकाय।

९. थेरगाथा अट्ठकथा और संयुत्तनिकाय।

१०. मारतज्जनीय सुत्त– मज्झिमनिकाय ।

११. थेरगाथा अट्ठकथा ।

१२. धम्मपद अट्ठकथा ।

१३. विमानवत्थु ।

१४. दीघनिकाय अट्ठकथा ।

१५. धम्मपद अट्ठकथा ।

१६. वहीं ।

१७. थेरगाथा अट्ठकथा १. ५३६ पी टी एस् ।

१८. विनयपिटक ।

१९. सुत्तानिपात अट्ठकथा १. ३०४ पी टी एस् ।

२०. थेरगाथा ।

२१. संयुत्तनिकाय ।

२२. अंगुत्तरनिकाय द्वितीय भाग पृ. १४८ भदंत आनंद कौसल्यायन ।

२३. गोसिंगसुत्त–मज्झिमनिकाय ।

२४. अंगुत्तरनिकाय ।

२५. सुत्तनिपात अट्ठकथा १. ३७० पी टी एस् ।

२३. बुद्धवंस ।

२७. थेरगाथा ।

★

संगीति–अध्यक्ष

★

महाकाश्यप

(ई. पू. ५२७)

★

उनका नाम पिप्पली कुमार था। वे महातीर्थ (मगध) में पैदा हुये थे। उनके पिता का परिवार ऐश्वर्य संपन्न था। पिप्पली के पिता कपिल और माता सुमना देवी थी।

लगता है कुछ मानव प्रवृत्तियाँ सर्वकालिन एक सी रही हैं। पिप्पली के माता पिता उसे तरुण होते देख उनका विचार कर घर में एक सुन्दर बहु लाना चाहते थे। पिप्पली विवाह करना नहीं चाहते थे और माता पिता उनका विवाह करने पर ही तुले हुये थे। अन्तमें मध्यम मार्ग निकाल कर पिप्पली ने माता पिता को इस शर्त पर राजी कर लिया कि उसके द्वारा निर्मित मूर्ति के समान वधु मिली तो वे शादी करेंगे नहीं तो नहीं।

उनके पिता ने इस शर्त की कसौटी पर उतरने वाली वधू की चारों ओर खोज की। अंत में साकेत नगर में एक तरुणी पाई गई। उसका नाम था भद्राकपिलानी।

भद्रा को भी वैवाहिक जीवन पसंद नहीं था। अपना यह अभिप्राय प्रकट करने के लिये उसने पिप्पली को यह कह कर संदेश भेजा कि वे अपने लिये कहीं अन्यत्र वधु खोज लें। इसी प्रकार का संदेश पिप्पली नें भी भद्राको भेजा। किन्तु दोनों ओर के परिवारों ने दोनों के संदेश एक दूसरे को मिलने नहीं दिये। दोनों की अनिच्छा के बावजूद उनका विवाह संपन्न हुआ।

परिवार वालों को किसी तरह का संदेह न हो इस लिये शय्याके बीच फूल की माला रख साथ सोते थे। इस प्रकार वे ब्रह्मचर्य का पालन करते रहे।

पिप्पली के पास असीमित धन संभार था। किसी चीज की कमी नहीं थी। फिर भी दोनों उसी बीच रह बरसों तक बैरागी जीवन व्यतित करते रहे।

एक दिन पिप्पली खेत पर गये। उस समय मजदूर खेत में हल चला रहे

थे। हल से फटी हुई जमीन में से बरसाती कीड़े बाहर निकल आये थे जिनको हलों के पीछे पीछे उड़ने वाले पक्षी खा रहे थे। यह प्रकृति का खेल पिप्पली मानवक ने देखा। उनसे कहा गया और उन्होंने स्वीकार किया कि इस पाप का उत्तरदाइत्व उन्हीं पर है। इससे उनके मन में पश्चाताप होने लगा। सारी भौतिक वस्तुयें त्याग देने का उन्हों ने उसी समय निश्चय किया।

इधर घर में भद्रा उन कौवों को देख रही थी जो धूप में सूखते तील से कीड़े खा रहे थे। पूछने पर उसकी दासी ने बताया कि इन कीड़ों की हत्या का पाप उसी को हो रहा है तो उसने भी गृहत्याग का संकल्प लिया। [१]

दोनों का एक ही संकल्प था। उन्हों ने एक दूसरे के बाल काटें। काषाय वस्त्र पहने और हाथ में पात्र ले विलापते दास दासियों को छोड़ घर से निकल पड़े। उन्हों ने सब दास दासियों को मुक्त कर दिया था और अपना धन उनमें बाँट दिया था।

पिप्पली आगे आगे और भद्रा उनके पीछे पीछे चल रही थी। कुछ दूर जाने पर दोनों को अनुभव हुआ कि दोनों का साथ यात्रा करना योग्य नहीं है। भिन्न दिशाओं में जाना दोनों ने तय किया। एक चौराहे पर पिप्पली ने दाहिने तरफ जानेवाला मार्ग पकड़ा और भद्रा ने बाई ओर का। दोनों ने दो भिन्न दिशाओं में प्रस्थान किया।

कहा जाता है कि जब दोनों पति पत्नी चौराहे से पृथक हुये तो धरणी कंपित हुई थी। उस समय भगवान बुद्ध वेळुवन की गंधकुटी में विराजमान थे। भूकंप का कारण जान भगवान आसन से उठ कर कुछ दूर तक गये। वे नालंदा और राजगृह के बीच बुद्ध-प्रभा विस्तीर्ण किये बहुपुत्रक नाम के निग्रोध के नीचे बैठ गये। [२]

पिप्पली उसी रास्ते से गुजर रहे थे। दूरसे ही भगवान को देख उन्हों ने जान लिया कि वे ही उनके शास्ता हैं। उन्हों ने गृहत्याग के अवसर पर ही यह संकल्प किया था कि संसार में जो अर्हत् है, सम्मेक बुद्ध हैं वे ही उनके शास्ता होंगे।

समीप पहुंचने पर भगवान ने उन्हें बैठने को कहा। तीन बातों का उपदेश दे भगवान ने उन्हें उपसंपदा दी – "काश्यप अपने आपको इस प्रकार सुशिक्षित करो। ज्येष्ठ भिक्षुओं के प्रति, श्रामणेरों के प्रति और समवयस्कों के प्रति आदर तथा सन्मान की भावना रखनी चाहिये। जो धर्म तुम सुनोगे जो कि सब की भलाई के लिये होगा। तुम उसे सावधान हो कर, कान खोल कर अपनी इच्छा से उसे ग्रहण करोंगे। शरीर के प्रति जागरूकता को कभी उपेक्षा नहीं करोंगे।" [३]

भगवान उन्हें ले राजगृह के लिये रवाना हुये। नगर के पास जा भगवान ने एक वृक्ष की छाया में बैठने की इच्छा प्रकट की। काश्यप ने अपने उतरासंध का आसन बनाया और वृक्ष के नीचे बिछा दिया। भगवान पीछे आसन पर बैठ गये। संघाटी को हाथ से स्पर्श कर भगवान ने मृदुलता से उसकी प्रशंसा की। काश्यप ने संघाटी को स्वीकार करने की भगवान से प्रार्थना की।

भगवान ने पूछा– "तुम क्या पहनोंगे ?"

उन्हों ने भगवान के जीर्ण चीवर की याचना की।

"किन्तु यह जीर्ण हुआ है और फट भी गया है" भगवान ने कहा।

काश्यप ने पुनः याचना की–"सारे संसार से भी यह मेरे लिये कीमती है।"

भगवान ने अपना पुराना चीवर काश्यप को दिया और उन्हीं ने अपना नया चीवर भगवान को प्रदान किया। काश्यप के इस महापुन्य के कारण धरती कांप गई थी क्यों कि भगवान द्वारा इस्तेमाल की हुआी वस्तु साधारण आदमी इस्तेमाल नहीं कर सकता था।

धूतांग व्रत धारण कर काश्यप ने आठ दिनो में ही तृष्णा का क्षय कर अर्हत् पद को प्राप्त किया। कहा जाता है कि बत्तीस महापुरुष लक्षणों में से उनके शरीर पर छः लक्षण विद्यमान थे।

भगवान की प्रथम भेंट में ही उनका नाम महाकाश्यप पड़ा। उनका काश्यप नाम क्यों पड़ा इस का खास कोई कारण दिखाई नहीं देता और न कोई व्याख्या ही की जा सकती हैं। यह अनुमान किया जाता है कि उनके कोसिक गोत्र [४] के नाम पर ही उनका काश्यप नाम रखा गया होगा। दूसरों से पृथक करने के लिये उन्हें बाद में महाकाश्यप कहा गया।

प्रथम भेंट में ही भगवान ने महाकाश्यप को अपना चीवर दिया था। इससे उनके प्रति भगवान की आस्था प्रदर्शित होती है। महाकाश्यप ने इस धटना को बड़े अभिमान के साथ हमेशा याद रखा। [५] कहा जाता है कि महाकाश्यप भगवान के पश्चात धर्म संगीति करवायेंगे यह भगवान जानते थे। [६]

महाकाश्यप के संबंध में कई प्रकार के वर्णन पाये जाते हैं। ऋद्धि में उन्हें महामौद्गल्यायन, कप्पिन और अनुरुद्ध की श्रेणी में रखा गया है [७] परंतु उनकी ज्ञानकी शृंखला सीमित बतलाई जाती है। ऐसी कई खास बाते थी जिनके बारे में महाकाश्यप को ज्ञान नहीं था। [८]

वे भिक्षुओं को क्रियाशील और धार्मिक जीवन व्यतित करने के लिये हमेशा प्रेरित करते थे। इस अर्थ में भगवान उन्हें अपने समान मानते थे। [९] अपनी अल्पेच्छता और संतोष के लिये वे भगवान की दृष्टि में ऊंचे थे। भगवान उनका अनुकरण करने का भिक्षुओं को उपदेश दिया करते।

महाकाश्यप के उपदेशों से लोग बड़े प्रभावित होते। भगवान ने उन्हें चंद्र की उपमा दी थी। वे लौकिक बंधनों से मुक्त थे। जैसे भगवान प्रतिपादन करते है–

"उसे किसी प्रकार की आवश्यकता की या गृहस्थ जीवन की अनुरक्ति नहीं है, न विहारों की और न कोठरी की। वह राजहंस की तरह है जो तालाब में पानी के अंदर डुबकी मारने पर भी पानी उसके शरीर पर नहीं ठहरता।" [१०]

एक समय श्रावस्ती में विहार करते हुये उनके संबंध में भगवान ने कहा,

"भिक्षुओं! काश्यप चीवर से संतुष्ट रहता है, चाहे वह कैसा भी हो, वह उसकी प्रशंसा करता है। भोजन कैसा भी प्राप्त हो वह उससे संतुष्ट होता है। शयनासन कैसा भी हो वह उससे संतोष ही पाता है। गिलान प्रत्यय जैसा भी हो वह खुशी से स्वीकार करता है। इस लिये भिक्षुओं यह सीखना चाहिये कि हम भी इसी प्रकार संतोष पायेंगे। [११]"

जीवन दर्शन के बारे में महाकाश्यप की अपनी अलग ही धारणा थी। उन्हें आरण्यक जीवन, भिक्षा से भोजन और चिथडों से चीवर प्रिय था। वृद्ध होने पर भी उन्हों ने अपना यह नियम खण्डित नहीं किया। यह देख एक बार वेळुवन में रहते भगवान कहते हैं–

"जिण्णेसि दानि त्वं, कस्सप, कसकानिच ते इमानि साणानि पंसुकूलानि निब्बसणानि। तस्मातिह त्वं, कस्सप, गहपतानि चेव चीवरानि धारेहि निमन्तनानि च भूंजाहि, ममच संतिके विहराहि' ति।"

किन्तु वे आरंभ से अंत तक पंसुकूलिक, पिण्डपातिक, आरण्यिक जीवन के प्रशंसक रहे। इसी कारण वे अंत समय तक अपने नियम को निभाते रहे।

उक्त वर्णन से स्पष्ट ही है कि वे एकांतवास के प्रेमी थे। वे दूसरे भिक्षुओं की छोटी से छोटी चूक भी सहन नहीं करते थे। विशेषतः तरुण, नवक भिक्षुओं के प्रति उनके मन में बड़ा क्षोभ होता था। इसी कारण भगवान के कई बार कहने से भी उन्हों ने भिक्षुओं को उपदेश देना स्वीकार नहीं किया। [१२] किन्तु एक बार आनंद के आग्रह पर भिक्षुणियो को उपदेश देने जाना ही पड़ा था।

महाकाश्यप अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे हुये थे। आयुष्मान आनंद उनके पास जा कर बोले–"भन्ते काश्यप भिक्षुणी विहार चलें।"

"आनंद तुम ही जाओ। तुम्हें ही बहुत काम रहता है।"

तीसरी बार अनुरोध करने पर महाकाश्यप को उन के साथ जाना

पड़ा। वहां उन्हों ने भिक्षुणियोंको उपदेश दिया। भिक्षुणियों को कभी उपदेश न देने के कारण वे उनके बीच उतने प्रसिद्ध नहीं थे। इसी कारण उपदेशोपरांत भिक्षुणी थुल्लतिष्याने खुल्लम खुल्ला उनका विरोध किया। वह बोली– "आर्य महाकाश्यप आर्य आनंद, विदेह मुनि के सामने धर्मोपदेश देनेका साहस कैसे कर सकते है? [१३] यह वैसे ही हुआ जैसे सूई बेचने वाला सूई बनाने वाले को सूई का वर्णन करें।" महाकाश्यपने थुल्लतिष्या की बात सुनी। उनको यह अच्छा नहीं लगा। उन्हों ने आनंद से पूछा– "आनंद सूई बेचने वाले और बनाने वाले की क्या कथा है?"

आनंद ने कहा– "भन्ते काश्यप क्षमा करे। स्त्रियाँ मूर्ख होती है।" [१४] इस घटना के संबंध में आनंदको उनकी एक लम्बी फटकार सुननी पड़ी थी।

वैसे महाकाश्यप आनंदको बहुत चाहते थे और बड़ा आदर भी करते थे किन्तु आवश्यकता होने पर डाटने में आगा पीछा नहीं करते। प्रथम संगीतिमें उन्हें आनंद के लिये आसन छोड़ रखा था और जब आनंद अर्हत् हुये तो उन्हें बहुत खुशी हुई थी।

एक समय की घटना है। महाकश्यप वेळुवन, राजगृह में विहार करते थे। आनंद बहुतसे नये भिक्षुओं को लेकर राजगृह पहुंचे। महाकाश्यप से भेट होने पर उन्हों ने अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गये। नये भिक्षुओं के व्यवहार से प्रसन्न नहीं थे। उससे क्षुब्ध हो उन्हों ने आनंद को खाने के पीछे भागने वाला और परिवारों का विनाशक कह फटकारा और अन्त में "यह लड़का अपनी सीमा भी नहीं जानता", कह समाप्त किया।

आनंद उनका बहुत ही आदर करते थे। वे उन्हें गुरुतुल्य मानते। अनादर न हो इस कारण आनंद उनका नाम तक नहीं लेते। आनंद को महाकाश्यप के शब्द बहुत चूभें। उन्हों ने केवल यहीं कहा– "भन्ते! मेरा सिर पके हुये बालों से भर गया हैं फिर भी मेरी समझ में नहीं आता कि आप मुझे लड़का क्यों कहते हैं?"

इस घटना का पता चलने पर थुल्लनंदा भिक्षुणी ने आनंद का पक्ष लिया। [१५] कोई भी भिक्षुणी आनंद के खिलाप एक शब्द भी नहीं सुन सकती थी। इसका कारण भी था। भिक्षुणी संघ की स्थापना करने में आनंद का प्रमुख हाथ रहा और महाकाश्यप भिक्षुणी संघ की स्थापना में भगवान को प्रोत्साहन देने के लिये आनंद को दोषी मानते थे। यह भिक्षुणियों को ज्ञात था। यह घटना भगवान के महापरिनिर्वाण के बाद की बताई जाती है [१६] जब कि आनंद का चारों और सन्मान बढ़ रहा था।

जान पड़ता है सारिपुत्र के साथ महाकाश्यप की अच्छी पटती थी।

ऋषिपतन में रहते समय एक बार सारिपुत्र उनसे दस अव्याकृत धर्मों के संबंध में प्रश्न पूछते हैं ।[१७] एक अन्य अवसर पर निर्वाण प्राप्ति के लिये उत्साह की आवश्यकता पर चर्चा करते हैं। सारिपुत्र के देहांत के कारण उनके मुख से कई गाथाएं निकली थी।[१८]

भगवान बुद्ध के जीवन काल में संघ में विनय के संबंध में असावधानी बढ़ रही थी। अर्हत् पद प्राप्त करने वाले भिक्षुओं की संख्या घट रही थी। महाकाश्यप को यह हमेशा खटकता था। उसे दूर करने के लिये वे भगवान से चर्चा करते दिखाई देते है।[१९]

आदर्श जीवन बिताने में वे जो भी प्रयत्न कर सकते थे वह किया। वे जंगल में वास करते थे। केवल भिक्षा पर निर्भर रहते, चिथड़ों का ही चीवर पहनते। वे समाज पर कम से कम निर्भर रह कर जीते। एक बार जब भगवान ने इस नियम को छोड़ने को कहा तो उन्हों ने इन्कार किया। कारण पूछने पर वे बोले– "मैं केवल अपने लिये ही नहीं बल्कि आने वाले भिक्षुओं का ख्याल करके इस प्रकार का जीवन व्यतित कर रहा हूँ।" भगवान ने उनकी बड़ी तारीफ की थी।[२०]

उनका उंचा आदर्श देख उन्हें दान देने को देवताओं में भी होड़ लगी थी। एक बार वे सात दिन की समाधि से उठे थे। उन्हें भोजन कराने इंद्र की पांच सौ अप्सरायें उनके सामने उपस्थित हुई। महाकाश्यप ने उनका दान अस्वीकार कर दिया और उन्हें चले जाने का आदेश दिया यह कह कर कि वे केवल गरीबों से ही भोजन ग्रहण करते हैं। यह बात शक्र ने सुनी। वह अपनी पत्नी सुजाता के साथ गरीब वृद्ध का भेष धारण कर जिस गली में महाकाश्यप भिक्षाटन कर रहे थे वहाँ कपड़े बुनने वाले की झोपड़ी में प्रकट हुआ। महाकाश्यप ने उसका भोजन ग्रहण किया किन्तु बाद में उन्हें इसका रहस्य ज्ञात हुआ। उन्होंने शक्र को खूब फटकारा। शक्र ने उनसे क्षमा मांगी। महाकाश्यप ने क्षमा करते हुये कि शक्र के छल के बावजूद इस दान का उसे पुन्य लाभ होगा। महाकाश्यप को दान दे कर इंद्र बहुत खुश हुआ। "अहो दान, महा दान मैंने काश्यप को दिया" कह वह चिल्लाता हुआ गया।[२१]

गरीबों के प्रति उनके मन में बहुत दया थी। वे दरिद्रों की बस्ती में ही भिक्षाटन किया करते। कालविलंगिक की कथा से भी यह स्पष्ट होता है कि वे गरीबों का कितना ख्याल रखते थे।[२२]

एक बार लोगों ने आलवि भिक्षुओं को अप्रसन्न कर दिया था क्यों कि उस दान में महाकाश्यप उपस्थित न हो सके थे।[२३]

भगवान के साथ महाकाश्यप राजगृह में भिक्षार्थ विचरण कर रहे थे।

वह त्यौहार का दिन था। बहुत सी स्त्रियाँ खाद्य भोज्य वस्तु लेकर उत्सव के लिये जा रही थी। उन्हों ने पहले भगवान को देखा। भगवान को भोजन प्रदान न कर उन सबने महाकाश्यप को दान कर दिया। उन्हों ने सब भोजन भगवान को स्वीकार करने का अनुरोध किया। [२४] इस से प्रतित होता हैं कि कुछ लोग भगवान को दान देने से भी महाकाश्यप को देने में अधिक पुन्य मानते थे।

भगवान के महापरिनिर्वाण के अवसर पर महाकाश्यप उपस्थित नहीं थे। वे पावा से कुसिनारा की ओर यात्रा कर रहे थे। उन्हें रास्ते में जीवक मिला। वह भगवान के शरीर पर से मंदारव के फूल लिये था। उसने भगवान के महापरिनिर्वाण की बात महाकाश्यप से कही। वह भगवान के महापरिनिर्वाण का सातवाँ दिन था। कहा जाता है कि भगवान की चिता में आग लगानें का कई बार प्रयत्न किया गया परन्तु सब व्यर्थ गया था। वहाँ उपस्थित अर्हतों ने बताया कि जबतक महाकाश्यप नहीं आते तबतक चिता में आग नही लग सकती। वे पांच सौं भिक्षुओं के साथ वहाँ पहुचे। उन्हों ने भगवान के श्रीपाद पर अपना माथा रखा। उसके पश्चात चिता में आग लगी। [२५] यह भी कहा जाता है कि राजा अजातशत्रु को भगवान की अस्तिका जो भाग प्राप्त हुवा वह महाकाश्यप द्वारा ही राजगृह में ले जाया गया था। [२६]

जो भिक्षु अभी अर्हत् नहीं थे वे भगवान के चले जाने से शोक विलाप करने लगे थे पर भिक्षु सुभद्र के कथन से सब लोग चौंक पड़े। विलापते भिक्षुओं को उसने कहा था–"आयुष्मानों! महाश्रमण गया तो ठीक ही हुआ। वह हमें हमेशा कहते रहे 'भिक्षुओं यह करो, यह न करो।' अब हम जैंसा चाहे वैंसा कर सकेंगे।" इन शब्दों को सुननें वालों में स्वयं महाकाश्यप भी थे। इसी कारण उन्हें प्रथम संगीति बुलवानी पड़ी।

भगवान की अस्ति का एक अंश लेकर वे राजगृह रवाना हुये। उनके सभापतित्व में संगीतिकार के तौर पर पांच सौं अर्हत भिक्षु चुने गये और वर्षावास के समय सप्तवर्णी गुफा में धर्म विनय का संगायन हुआ। इस संगीति को थेरसंगीति या थेरवाद कहा गया।

आनंद अभी अर्हत् नहीं थे इस कारण उनके लिये धर्मासन छोड़ रखा था क्यों कि उनके बिना संगीति नहीं हो सकती थी। वे दूसरे दिन अर्हत् पद को प्राप्त हुये। विनय के लिये उपालि महास्थविर और धर्म के लिये आनंद चुने गये। धर्म विनय के संबंध में उन दोनों से प्रश्न पूछने के लिये महाकाश्यप ने अपने लिये संघकी स्वीकृति ली। सभापति के आसन पर विराजमान हो महाकाश्यप ने प्रश्न पूछे और धर्मासन पर विराजमान हो क्रमशः उपालि एवं आनंद ने उनके उत्तर दियें।

इस संगीति में महाकाश्यप ने सभापति की हैसियत से आनंद पर कई दोषारोपन किये थे।[२७] विनय को लेकर भगवान ने आनंद से कहा था कि संघ आवश्यक समझे तो छोटे मोटे नियम छोड़ दे सकता है। संगीति में आनंद ने इस बात को प्रकट किया। महाकाश्यप ने उसे स्वीकार नहीं किया था। इसी कारण ढाई हजार वर्ष से सारे के सारे नियम परिवर्तित किये बिना या बिना संशोधन के ही चले आ रहे हैं, चाहे दैनिक जीवन से उनका कोई संबंध ही क्यों न हो।

जान पड़ता है महाकाश्यप परिवर्तन वादी नहीं थे। प्रतीत होता है, वे कट्टर परंपरा वादी थे। इसी कारण यह असंभव नहीं कि उक्त प्रथम संगीति उनकी दृष्टिकोन से ही कराई गयी थी। ऐसे हजारों भिक्षु थे जो इस संगीति में किसी कारण सम्मिलित नहीं हो सके थे।

महाकाश्यप ने बड़ी लम्बी उम्र पायी थी। प्रथम संगीति के अवसर पर वे एक सौ बीस वर्ष के बताये जाते है।[२८] कहा जाता है कि वे एक सौ बीस साल तक शय्या पर नहीं सोये थे।[२९] अर्थात् गृहत्याग के उपरांत वे कभी चारपाई पर सोये ही नहीं। अनुमानतः गृहत्याग के समय वे लगभग तीस वर्ष के होने चाहिये। इस प्रकार वे एक सौ पचास वर्ष तक जीवित रहे।

माना जाता है कि महाकाश्यपका एक दात श्रीलंका के भीमातित्व विहार में प्रस्थापित किया हुआ है।[३०]

---

१. भद्दाकपिलानि थेरी अपदान, अपदान–खुद्दकनिकाय।
२. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा १. ३४७,३५७।
३. संयुत्तनिकाय २, २२०।
४. अपदान।
५. संयुत्तनिकाय २,२२१।
६. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा २, १३०।
७. संयुत्तनिकाय १. ११४।
८. धम्यपद अट्ठकथा २. २५८।
९. संयुत्तनिकाय २,२०५।
१०. धम्मपद अट्ठकथा २. १६९।
११. कस्सप संयुत्त, संतुट्ठ सुत्तं–संयुत्तनिकाय।
१२. कस्सप संयुत्तं–ओवाद सुत्तं, संयुत्तनिकाय।

१३. विस्तार के लिये देखें आनंद चरित्र ।
१४. कस्सपसंयुत्तं–उपस्थानसुत्तं, संयुत्त निकाय ।
१५. कस्सपसंयुत्त–चीवरसुत्तं, संयुत्त निकाय ।
१६. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा २. १३५ ।
१७. कस्सपसंयुत्तं–परम्मरणसुत्तं–संयुत्तनिकाय ।
१८. थेरगाथा ।
१९. कस्सपसंयुत्त–संयुत्तनिकाय ।
२०. वहीं ।
२१. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा २. ८१२ ।
२२. धम्मपद अट्ठकथा १. ४२३ ।
२३. जातक २. २८२ ।
२४. विसुद्धिमग्ग भाग २ पी. टी. एस्. ।
२५. दीघनिकाय २. १६३ ।
२६. महावंश–परिच्छेद ३ पृ. १४६ भदंत आनंद कौसल्यायन ।
२७. देखें आनंद चरित्र ।
२८. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा २. १३० ।
२९. दीघनिकाय अट्ठकथा २. ४१३ ।
३०. चूलवंस परिच्छेद ८५ ।

★

चण्डप्रद्योत राजा के शिष्ट–मण्डल के नेता

★

महाकात्यायन

(ई. पू. ५२७)

★

भगवान ने भिक्षु–परिषद में घोषणा की थी "संक्षिप्त उपदेश को विस्तृत कहने वालों में महाकात्यायन प्रमुख है।" संखित्तेन भासितस्स वित्थारेण अत्थं विभजन्तानं।[१] भगवान द्वारा देसित संक्षिप्त उपदेश विस्तार पूर्वक समझाने में वे सबसे निपुन थे।

उनके पिता तिरिहिवच्छ उज्जैनी में चण्डप्रद्योत राजा के दरबार में पुरोहित थे। उनकी माता का नाम चंद्रिमा (चंदिमा) था।[२] उनके बाल स्वर्ण वर्ण होने के कारण और कात्यायन गोत्र के नाम पर उनका नाम कात्यायन (कच्चायन, कच्चान) रखा गया।

उस काल की परंपरा के अनुसार उन्होंने तीनों वेदों का अध्ययन किया। इसी प्रकार पुरोहित पद के योग्य अन्य ज्ञान का भी अर्जन किया। अपने पिता के देहांत के पश्चात वे अवंति राजा चण्डप्रद्योत के पुरोहित हुये।

अवंति का राजा प्रद्योत क्रूरता के लिये और चण्डना के लिये प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि सिद्धार्थ कुमार के जन्म दिन ही उनका भी जन्म हुआ था।[३] प्रद्योत के जन्म के दिन प्रकाश चारो ओर फैल गया था। इसी कारण उनका नाम प्रदिप्त करने वाला प्रद्योत पड़ा और जिस दिन बोधिसत्व ने बुद्धत्व प्राप्त किया उसी दिन प्रद्योत का राज्यभिषेक भी हुआ था।[४]

एक बार प्रद्योत बिमार पड़ा था। उसने राजा बिंबिसार से जीवक वैद्य की माँग की क्यों कि उसीसे वह रोग ठीक हो सकता था। राजा प्रद्योत को घी से बेहद घृणा थी और उसकी बीमारी की दवा के लिये घी अनिवार्य था। जीवक वैद्य यह जानता था। इसी कारण उसने राजा से अनुमति प्राप्त कर ली थी कि वह किसी भी समय किसी भी हाथी या अश्व पर सवार हो नगर से बाहर जा सकेगा। जीवक ने घी में दवा बनाई। प्रद्योत को दवा पिलाकर जीवक भद्रावती नाम की राजकीय हाथिनी पर सवार हो भाग गया। दवा पीने के पश्चात राजा बेहोश हो गया था।

होश आने पर राजा को पता चला कि से घी में दवा पिलाई गई है। जीवक को पकड लाने के लिये उसने काक को जा। कोशंबी में जलपान करते उसने जीवक को पाया। मीठा व्यवहार दिखा जीवक ने उसे किसी तरह रेचक से बेहोश किया। जब तक वह होश में आया तब तक उधर राजा प्रद्योत का रोग पूर्णरूपेण दूर हुआ। उसने काक को अपना भाग आने का कारण बताया। खुश होकर राजा ने जीवक को बहुत सारे उपहार भेजे। [१]

भगवान बुद्ध की कीर्तिगाथा अवंति राज्यतक पहुँच चुकी थी। भगवान के दर्शन करने की प्रद्योत को बेहद इच्छा हुयी। राजाने अपने पुरोहित कात्यायन को अन्य सात पण्डितों को साथ दे भगवान को उज्जैनी लिवा लाने को भेजा।

कात्यायन के नेतृत्व में आठ व्यक्तियों का मण्डल भगवान के पास पहुँचा। उन्होंने भगवान का उपदेश सुना। उपदेश सुन उन्हें विमुक्ति प्राप्त हुयी। वे सब भगवान के पास प्रव्रजित और उपसंपन्न हुये। कात्यायन ने राजा के निमंत्रण की भगवान को याद दिलाई परंतु भगवान साथ नहीं गये। उन्होंने कात्यायन को ही भेजा। भगवान ने उन्हीं का जाना पर्याप्त समझा।

महाकात्यायन अपने सात मित्रों को लेकर उज्जैनी के लिये रवाना हुये। रास्ते में महाकात्यायन उज्जैनी के पास तेलप्पनाळि ग्राम में भिक्षाटन के लिये रुके। एक गरीब लड़की ने उन्हें खाली हाथ लिये देखा। उसने उन्हें अपने घर भोजन के लिये निमंत्रित किया। उसके पास भोजन की सामग्री इकट्ठा करने को और कुछ भी नहीं था। उसने अपने सुन्दर बाल काटें और सेविका को बेचने के लिये दे दिये। उन पैसों से उसने महाकात्यायन को भोजन कराया। अपने आपको कात्यायन की नजर से बचे रहने का उसने बहुत प्रयत्न किया पर अंत में उसे उनके सामने जानाही पड़ा। कहा जाता है कि महाकात्यायन के सामने आते ही उसके बाल पूर्ववत् हो गये। [१] इस घटना के ज्ञात होने पर प्रदद्योतने उस गरीब लड़की को अपनी रानी बनाया था।

उज्जैनी पहुंच महाकात्यायन राजाकी उद्यान में ठहरे। वहाँ राजा ने उनकी हर प्रकार की व्यवस्था की थी। वहाँ उन्होंने लोगोंको उपदेश दिया। उन्होंने अपने उपदेशों से लोगोंको बहुत प्रभावित किया। कई तरुणों ने उससे प्रब्रज्या प्राप्त की। उज्जैनी नगरमें जहां तहां भिक्षु दिखाई देने लगें। अवंति में बौद्ध धर्म की स्थापना कर महाकात्यायन पुनः भगवान के पास लौटें।

एक समय भगवान शाक्यों के निग्रोधाराम मे विहार करते थे। पुर्वान्ह में चीवर पहन पात्र ले भगवान नें भिक्षाटन के लिये प्रवेश किया। भोजनोपरांत भगवान महाबन में दिवाविहार के लिये गये। वहाँ दण्डपानी भगवान के

पास जा कुशल क्षेम पूछ एक ओर खड़ा हो गया। उसनें भगवान से पूछा "महाश्रमण के क्या सिद्धांत है ?"

"आवुस मेरे सिद्धांत हर प्रकार के कलह, हर प्रकार के निग्रहों को पूर्ण रुपसे नष्ट कर आदमी को उच्चतम सुख को प्राप्त कराते हैं।"

सायन्हसमय भगवान इस संबंध में भिक्षुओं को उपदेश देते हैं और महाकात्यायन की ओर संकेत कर आसन से उठ जाते हैं। महाकात्यायन उस विषय पर भिक्षुओं को सविस्तर उपदेश देते हैं।

"आयुष्मानो ! चक्षु और चक्षु प्रत्यय से चक्षु विज्ञान उत्पन्न होता है; श्रोत और शब्द से श्रोत विज्ञान की उत्पत्ति होती है, घ्राण और गंधसे घ्राण विज्ञान, जिव्हा और रससे जिव्हा विज्ञान, काया और स्पर्श से काय विज्ञान तथा मन और धर्म से मनोविज्ञान की उत्पत्ति होती है।" इस तरह वे संपूर्ण सूत्र का विस्तृत उपदेश देते हैं। [७] उनका उपदेश सुन भिक्षु भगवान के पास जाकर उस संबंध में कहते हैं। सुन कर भगवान महाकात्यायन की प्रशंसा में उदान वाक्य कहते है, "भिक्षुओ महाकात्यायन बहुश्रुत है, पण्डित है, महाप्रज्ञावान है। भिक्षुओं मैं भी उसी प्रकार व्याख्या करता जैसी महाकात्यायन ने की है।" [८]

एक समय भगवान बुद्ध राजगृह के तपोदाराम में विराजमान थे। उसी तपोदवन में आयुष्मान समिद्धि भी विहार करते थे। आयुष्मान समिद्धि ने भोर में ही उठ स्नान किया। उसी समय एक देवता सारे वन को प्रकाशित कर उनके पास गया। एक ओर खड़ा हो उसने आयुष्मान समिद्धि से प्रश्न पूछा "हे भिक्षु, क्या तुम भद्देकरत्त सुत्त को जानते हो ?"

"मैं नहीं जानता।"

"क्या तुम जानते हो ?" आयुष्मान समिद्धि ने उस देवता से पूछा।

"नहीं, मैं भी नहीं जानता।"

"भिक्षु, सुत्तकी गाथाएँ जानते हो ?" देवताने पूछा।

"मैं नहीं जानता।"

"क्या तुम जानते हो ?"

"भिक्षु, मैं नहीं जानता। भिक्षु तुम भद्देक सुत्त को सीखो।" कहता हुआ देवता लुप्त हुआ।

आयुष्मान समिद्धि भगवान के पास गया। उसने रात वाली घटना भगवान को सुनाई। भगवान ने समिद्धि को सूत्रकी गाथाएँ सिखाई। गाथाओं की व्याख्या सुननें वे महाकात्यायन के पास पहुंचे। उन्हों नें विस्तारपूर्वक सूत्रकी

व्याख्या की। पुनः भगवान के पास जा समिद्धिने उस व्याख्या को दोहराया जिसे सुन उन्हों ने महाकात्यायन की खूब प्रशंसा की। [९]

इस प्रकार तथागत से उपदेश सुन भिक्षु लोग अधिक जानकारी प्राप्त करने महाकात्यायन के पास जाते जिनमें वल्लिय स्थविर भी था जो कात्यायन के नेतृत्व में प्रव्रजित हुआ था।

उत्तर मानवक कोशांबीका तरुण था। उसका पिता उदयन राजा का पुरोहित था। पिता के देहांत के उपरांत उसके द्वारा आरंभ किया गया नगर का कार्य उत्तर को ही करना पड़ा था। वह एक दिन पेड़ कटवाने के लिये जंगल जा रहा था। वहाँ उसने महाकात्यायन को देखा। उनसे चर्चा कर उत्तर बहुत ही प्रभावित हुआ। उपदेश के बाद उत्तर ने महाकात्यायन को सभी भिक्षुओं के साथ अपने घर भोजन करने निमंत्रित किया।

दूसरे दिन महाकात्यायन उत्तर के निवास पर भोजन करने गये। भोजन कर चुकने पर उत्तर उनके साथ विहार गया। उत्तरने उनसे प्रार्थना की कि वे जबतक यहाँ रहे तबतक रोज उसका दान ग्रहण करें। विहार में उपदेश सुन वह श्रोतापन्न हो गया। उत्तर ने भिक्षुओं की सुविधा के लिये विहार बनवाया था और नगर के दूसरे लोगों को भी प्रेरित किया था कि वे भी उसके अच्छे कामो में हाथ बटायें।

एक बार काली करुधर महाकात्यायन के पास पहुंची और कुमारी प्रश्नों की एक गाथा पर विस्तार पूर्वक उपदेश देने की प्रार्थना की। काली और उसका पति अवंति राज्य के नागरिक थे। उसने वहाँ तथागत का उपदेश श्रवण कर श्रोतापन्न फल प्राप्त किया था। वहीं रहते हुये उसको सोण कुटिक नाम का पुत्र हुआ जो बादमें महाकात्यायन के पास प्रव्रजित हुआ था।

उनका अनुकरण करने, वाले, उनकी सलाह से कार्य करने वाले बहुत थे। उनके शिष्यों में से कुछ थे – इसिदत्त, अवंतिपुत्र, लोहिच्च, अरामदण्ड और कण्डरायण।

वे अवंति में राजउद्यान में नहीं रहते थे वहाँ वे प्रव्रज्या के पश्चात ठहरे थे। वे खास तौर पर कुररघर–प्रपात और मक्करकट बन की कूटी में विहार करते थे। [१०] वे कभी कभी मधुरा के गुण्ठावन में [११], तपोदावन [१२] राजगृह में [१३] तथा सोरय्य, कोशंबी में [१४] विहार करते थे।

एक अवसर पर महाकात्यायन भिक्षाटन के लिये नगर में प्रवेश करने से पहले अपना चीवर ठीक कर रहे थे। उस वक्त सोरेय्य का श्रेष्ठी पुत्र सोरेय्य बड़ी जमात के साथ शहर से बाहर जलक्रिडा के लिये जा रहा था। सोरेय्य ने महाकात्यायन की शरीर शोभा देख कामना की कि कितना अच्छा होता यदि

उन्हें अपनी भार्या बना सकता या उसकी पत्नी का ही ऐसा वर्ण होता। इस विचार के तुरंत बाद सोरेय्य के शरीर के अंग प्रत्यंग बदलने लगे और वह स्वयं स्त्री बन गया। वह अपने मित्रों से छिप कर सार्थवाहनो के साथ तक्षशिला (गई) गया। वहाँ वह एक खजानची की पत्नी बनी और दो पुत्रों की माँ भी हो गई। इधर सोरेय्य में उसके दो पुत्र थे जो स्त्री रूप में परिवर्तित होने से पूर्व हुये थे।

कुछ समय बीतने पर उसने एक दिन रथ में बैठ सड़क से जाता एक पुराना मित्र देखा। दासी को भेज उसे बुलाया। मित्र उसे पहचान नहीं सका। अपने मित्र के सामने उसने सत्य का उद्घाटन किया। उसके बाद वे दोनों सोरेय्य लौटे। दूसरे दिन उन्हों ने महाकात्यायन को भोजन का निमंत्रण दिया। भोजन के उपरांत सोरेय्य उनके चरणों पर लौट क्षमा मांगने लगा। उसने सारी घटना यथावत कह दी। महाकात्यायन की क्षमा के अनंतर सोरेय्य पुरुष बन गया।

बाद में सोरेय्य महाकात्यायन के पास प्रव्रजित हो उनके साथ श्रावस्ती गया। वहां लोगों को उसकी कथा ज्ञात हुई तो प्रश्नों से उसे हैरान कर दिया। इससे बचने के लिये वह एकांत में चला गया। वहां योगाभ्यास कर चित्त पर विजय प्राप्त की और अर्हत् हो गया।

विमुक्ति प्राप्त करने के पहले जब लोग उससे पूछते कि वह अपने कौनसे लड़कों को अधिक प्रेम करता है तो वह उत्तर देता कि स्त्री रूपमें प्राप्त बच्चों को अधिक प्रेम करता है, किन्तु अर्हत् पद प्राप्त करने के बाद का उसका उत्तर था कि किसी के भी प्रति उसके मन में कोई बंधन नहीं है।[१५]

इसी प्रकार की और एक घटना महाकात्यायन को लेकर बतायी जाती है।[१६] वे एक बार गिज्जकूट पर्वत से उतर रहे थे। राजा अजातशत्रु के मंत्री वस्सकार ने उन्हें देखा और कहा, कि वे बंदर के समान लगते हैं। भगवान ने वस्सकार की मन की बात जान कर उसे सावधान किया कि मरणोपरांत वह वेळूवनही में बंदर की योनी में पैदा हो सकता है। वस्सकार ने विश्वास किया और अपने भावी मर्कट जीवन के आराम के लिये वेळूवन में व्यवस्था कर रखी।

कहा जाता है कि अवंति में रहते समय भी वे लम्बा रास्ता तय कर के नियमित रूपसे भगवान का उपदेश सुनने जाया करते थे। कभी पहुंचने में उन्हें देरी हो जाती तो प्रधान शिष्यों के बीच उनके लिये स्थान सुरक्षित रहता।

परंपरा के अनुसार महाकात्यायन नेत्तिप्पकरण नामक पालिव्याकरण के कर्ता थे। इसी प्रकार पेटकोपदेश भी उन्हीं का माना जाता है।[१७]

---

१. अंगुत्तरनिकाय १. २३।

२. कच्चायन वग्गो–अपदान–खुद्दकनिकाय।

3. Rockhill op. cit. 17

४. वही ३२।

५. विनयपिटक १. २७६।

६. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा १. ११७।

७. मधुपिण्डिक सुत्त–मज्जिमनिकाय।

८. वही।

९. महाकच्चायन–भद्देकरत सुत्त–मज्झिमनिकाय।

१०. संयुत्तनिकाय ३. ९।

११. अंगुत्तरनिकाय १.६५।

१२. मज्झिमनिकाय २. ८३।

१३. वही।

१४. धम्मपद अट्ठकथा १. ३२५।

१५. धम्मपद अट्ठकथा १. ३२४।

१६. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा ११. ८५४।

17. Dictionary of Pali Proper Names–
Dr. Malalasekera.

★

महान पिता के योग्य पुत्र

★

राहुल

(ई. पू. ५२७)

★

भगवान बुद्ध को महाकारुणिक इस लिये कहा जाता है कि उनके हृदय में सभी के प्रति समान रूपसे दया थी। भगवान का जो व्यवहार देवदत्त के प्रति था वही नालागिरी हाथी के प्रति रहा। उन्होंने जो प्रेम अंगुलिमाल ड़ाकु के लिये प्रदर्शित किया वहीं अपने पुत्र राहुल को दिया। उनकी करुणा सीमित नहीं सार्वभौम थी। राहुल कुमार सिद्धार्थ गौतम का एकलौता बेटा था। संघ में प्रवेश करने के बाद वे वैसे ही जिये जैसे अन्य भिक्षु जीते थे। भगवान के पुत्र होने के नाते उनको विशेष कोई सुविधा नहीं थी और न हीं उन्होंने इसकी कभी इच्छा की। उनके पिता ने जिस मार्ग की खोज की थी उस मार्ग पर वे और उनकी माता जीवन भर चलते रहें। राहुल बड़े ही विनीत और शिक्षा कामी थे। इस कारण भगवान बुद्धने उनके प्रति उदान वाक्य कहा था कि राहुल शिक्षा कामियों में प्रमुख है।

एक परंपरा के अनुसार राहुल के जन्म दिन पर सिद्धार्थ कुमार ने महाभनिष्क्रमण किया था।[१] मध्यरात्रि में वे नवजात शिशु और उसकी माँ को छोड़ चुपके से भाग गये थे। किन्तु एक अन्य परंपरा के अनुसार सिद्धार्थ कुमार रात्रि के समय चोरीसे नहीं भागे थे। वे शाक्य संघ के सामने प्रव्रजित हो राज्यसे बाहर जाने का संकल्प कर अपने महल लौटे। यशोधरा को दासी द्वारा इस घटना की सूचना पहले ही मिली थी। पिता शुद्धोदन और माता प्रजापती गोतमी को अपना निर्णय सुना उन्हें रोते विलापते छोड़ सिद्धार्थ कुमार राजकुमारी यशोधरा के महल गये। यशोधरा का चेहरा देखकर सिद्धार्थ के मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे अपनी पत्नी से क्या कहे और कैसे कहे। स्वामी को चुप देख कर यशोधरा ने ही मौन भंग किया। वह बोली,

" कपिलवस्तु में शाक्य संघ की सभा में जो कुछ हुआ वह सब मैं सुन चुकी हूँ।"

सिद्धार्थ कुमार को आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा था कि उनके निर्णय की बात सुन यशोधरा रोती विलापती होगी, एक अबला की तरह। उन्होंने पूछा,

"यशोधरा ! मुझे बता कि तुझे मेरा प्रव्रजित होने का निश्चय कैसा लगा है ?"

अपनी भावनाओं को अच्छी तरह अपने वश में रखकर उसने उत्तर दिया,

"यदि मैं ही तुम्हारी स्थिति में होती तो और दूसरा मैं कर ही क्या सकती थी ? निश्चय से मैं कोलियों के विरुद्ध छेड़े जाने वाले युद्ध में हिस्सा नहीं ले सकती थी। तुम्हारा निर्णय ठीक है । तुम्हें मेरी अनुमती और समर्थन प्राप्त है। में भी तुम्हारे सात प्रव्रजित हो जाती। यदि मैं नहीं हो रही हूँ तो इसका एक मात्र कारण है कि मुझे राहुल का पालन पोषण करना है। अच्छा होता यदि ऐसा न हुआ होता। हमें वीरता पूर्वक स्थिति का मुकाबला करना चाहिये। अपने माता पिता तथा पुत्र की चिन्ता न करना। मैं जबतक जीऊंगी उनकी देख भाल करूंगी।"

देवी यशोधरा आगे कहती है, "अब मैं इतना ही चाहती हूँ कि अपने प्रिय संबंधियों को छोड़ छाड़ कर जो तुम प्रव्रजित होने जा रहे हो, तुम ऐसे नये पथ का अविष्कार कर सको जो मानवता के लिये कल्याणकारी हो।" ये थे वीरपत्नी यशोधरा के बोल।

सम्बोधि प्राप्ति के उपरांत भगवान बुद्धने सारनाथ में धर्मचक्रप्रवर्तन कर पुन: उरुवेला पधार कर काश्यप-बंधुओंको प्रव्रजित किया। उन्होंने वहांसे राजगृह और पिताकी प्रार्थना पर सात वर्ष पश्चात शाक्यों की भूमि में प्रवेश किया। इस लंबी अवधि तक माता ही राहुल के लिये सब कुछ थी। वह राहुल को उनके पिताकी यशो गाथा सुनाती रही। वह माता यशोधरा का एक सहारा था। उसके हृदय को प्रकाशित करनेवाला एक दीपक था।

यशोधरा भगवान के आगमन की प्रतीक्षा में थी और उनकी एकमात्र निशानी को अपने प्राणोंसे भी जतन कर रही थी। वह राहुल को उसके पिता के हवाले कर अपना कर्तव्य पूरा करना चाहती थी। वह यह बताना चाहती थी कि उसको सौपा गया कार्य उसने पूर्ण किया। जिस महापुरुष ने उसे राहुल को दिया था वह उसी महापुरुषकी गोद में उसे बिठा देना चाहती थी। यही उसकी अंतिम और एकमात्र कामना थी।

दूसरे दिन पूर्वान्ह समय चीवर पहने पात्र ले भगवान बुद्ध ने भिक्षार्थ कपिलवस्तु में प्रवेश किया। यशोधरा ने भगवान को खिड़की से देखा। वह दौड़ी दौड़ी शुद्धोदन के पास गई। इस विचित्र वार्ता को सुन शुद्धोदन अपनी धोती

संभालते हुये भगवान के पास पहुँचा, "तुम इस प्रकार मुझे क्यों लजाते हो ? क्या तुम इतना नहीं जानते कि मैं तुम्हें और तुम्हारे संघ को भोजन करा सकता हूँ ?"

"महाराज यह हमारी वंश परंपरा है।"

"यह कैसे हो सकता है ? हमारे वंश में कभी किसी एक ने भी भिक्षाटन नहीं किया है।"

"राजन् ! निश्चय से तुम और तुम्हारा वंश क्षत्रियों का वंश है। किन्तु मेरा वंश बुद्धों का वंश है। उन्होंने भिक्षाटन किया हैं और हमेशा भिक्षापर ही निर्भर रहे है।"

भगवान का उत्तर सुन शुद्धोदन निरुत्तर हुए।

तब तथागत[1] को शुद्धोदन घर लिवा ले गये। परिवार के सभी लोग भगवान को अभिवादन करने आये।[1] लेकिन राहुलमाता यशोधरा नहीं आई। जब शुद्धोदन ने सूचना भिजवाई तो उसने कहला भेजा, "मैं किसी योग्य समझी जाऊंगी तो वे यही मुझे दर्शन देने आयेंगे।"

सभीसे मिल चुकने के बाद भगवान ने पूछा–"यशोधरा कहां है ?" उत्तर, मिला "उसने आनेसे इनकार कर दिया है।"

भगवान आसन से उठे और सीधे यशोधरा के भवन में गये। सारिपुत्र मौद्गल्यायन को भगवान यशोधरा के कमरे के भीतर तक ले गये थे। भगवान ने दोनों प्रधान शिष्यों से कहा–"मैं तो मुक्त हूँ। लेकिन यशोधरा अभी मुक्त नहीं है। इतने लम्बे अरसेतक मुझे नहीं देखा है। इस लिये वह बहुत दुःखी है। जबतक उसका दुःख आंसुओं के द्वारा बह नहीं जायेगा, उसका जी भारी रहेगा। यदि वह तथागत का स्पर्श भीं कर लें तो उसे रोकना नहीं।"

यशोधरा सोच में डूबी हुई अपने कमरें में बैठी थी। तथागत ने प्रवेश किया तो वह भक्ति भावसे भर गई। वह यह भूल गई कि उसका स्नेह भाजन भगवान बुद्ध हैं। लोक गुरू है, सत्य का महान् उपदेष्टा है। उसने बड़े जोर से भगवान के चरण पकड़े और फूट फूट कर रोने लगी।

यशोधरा ने सात वर्ष के राहुल को एक राजकुमार की तरह सजाया और बोली, "यह श्रमण जो ब्रह्मा के समान है, तेरे पिता हैं। उनके पास अक्षय निधि है, जिसे मैंने अभीतक नही देखा है। उनके पास जा और वह अक्षय निधि मांग, क्यों कि वह तेरा उत्तराधिकार हैं।"

राहुल बोला– "मेरा पिना कोन है ? मैं तो एक बाबा शुद्धोदन को ही पिता जानता हूँ।"

यशोधरा ने राहुल कुमार को गोद में लिया और खिड़की में से दिखाया, "वह देख, वह तेरा पिता है, शुद्धोदन नहीं।" उस समय भगवान भिक्षु संघ के बीच बैठे भोजन कर रहे थे और वहाँ से दूर नहीं थे।

राहुल उनके पास गया और ऊपर मुंह उठा कर निर्भयतापूर्वक किन्तु बड़े ही स्नेह स्निग्ध स्वर में बोला,

"क्या तुम मेरे पिता नहीं हो ?" और भगवान के पास खड़ा ही खड़ा कहने लगा, "श्रमण तुम्हारी छाया बड़ी सुखकर है।" तथागत मौन रहे।

भोजन समाप्त कर भगवान ने आशीर्वाद दिया और महल से बिदा हुये। राहुल पीछे पीछे हो लिया तथा अपना उत्तराधिकार मांगता रहा। राहुल को किसीने नहीं रोका न स्वयं तथागत ने ही।

भगवान ने सारिपुत्र की ओर देखा, "राहुल उत्तराधिकार चाहता है। मैं उसको वह नाशवान् निधि नहीं दे सकता जो अपने साथ चिंताएँ लाती हैं लेकिन मै उसे श्रेष्ठ जीवन का उत्तराधिकार दे सकता हुँ, जो अपने में एक अक्षय निधि है।"

तब राहुल को ही संबोधित करके तथागत बोले–"सोना, चान्दी और हीरे मेरे पास नहीं है। यदि तू आध्यात्मिक निधि चाहता है और उसे ले सकने तथा संभालकर रखने में समर्थ है तो वह मेरे पास बहुत है। मेरी अक्षय निधि मेरे धर्म का मार्ग ही है। क्या तू उनके संघ में प्रविष्ट होना चाहता है? जो अपना जीवन साधना में व्यतीत करता है और जो ऊंचे से ऊंचा आदर्श है, ऊंचे से ऊंचा सुख है और जो प्राप्य है, उसे प्राप्त करने का प्रयास करता हैं ?"

छोटे राहुल ने दृढता पूर्वक कहा–"प्रविष्ट होना चाहता हूँ।"

भगवान की आज्ञा पर सारिपुत्र ने राहुल को प्रव्रजित किया। मोद्गल्यायन उनके आचार्य हुये।[४] राहुल के प्रव्रजित होने के कारण राजा शुद्धोदन को बेहद दु:ख हुआ। भगवान के पास जा कर राजा ने शिकायत की और उनसे यह वर प्राप्त किया कि आज से माता पिता की अनुज्ञा के बिना किसी भी बच्चे को प्रव्रजित नहीं किया जाएँ। भगवान ने राजा शुद्धोदन की प्रार्थना स्वीकार की।[५]

कहा जाता हैं कि राहुल की प्रव्रज्या के तुरंत बाद उनके मार्गदर्शन के लिये भगवान ने कई सूत्रों का उपदेश दिया था।[६] राहुल भी भगवान से एवं अपने आचार्य तथा उपाध्याय से उपदेश सुनने के लिये बड़े उत्सुक रहते। वे

सबेरे उठ मुष्ठि भर बालू लेकर कहा करते, "क्या आज मैं इन बालू के कणों जितने उपदेश के शब्द अपने पथ प्रदर्शकों से सुन सकूंगा ?"

राहुल का स्वभाव देख भिक्षु अक्सर उसकी आज्ञाकारी व्यवहार की चर्चा किया करते। एक दिन भगवान ने इस प्रकार की बातें भिक्षुओं के मुखसे सुनी तो वे उनके पास जा उन्हें तित्तिर जातक[७] और तिपल्लत्थमिग जातक[८] की कथा सुना कर कहा कि राहुल इस जन्म में ही नहीं अपने पूर्व जन्मों में भी प्रसिद्ध आज्ञाकारी रहा है।

राहुल अभी नये ही थे। तब भगवान राजगृह के वेळुवन कलंदकनिवास में विहार करते थे। राहुल भी अंबलट्ठिका में रहते थे। भगवान अपरान्ह में उन्हें देखने गये। दूरसे ही तथागत को आते देख राहुल ने आसन बिछाया। पैर धोनेको पानी रखा। आसन ग्रहण करने पर राहुल भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। तब भगवान ने जल–पात्र में थोड़ा पानी लेकर राहुल से पूछा,

"राहुल तू इस पात्र में थोड़ा पानी देख रहा है ?"

"हाँ भन्ते।"

"राहुल जिनको झूठ बोलने में लज्जा नहीं होती उनका श्रामण्यभाव ऐसा ही है जैसा इस पात्र में थोड़ा सा जल।"

भगवान ने पात्र से पानी गिराकर राहुल से पुनः पूछा, "राहुल तू देख रहा है गिरा हुआ जल ?"

"हाँ भन्ते।"

"राहुल जिनको झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती उनका श्रामण्यभाव ऐसा ही गिरा हुआ रहता है।"

भगवान ने जल पुनः ढाँक कर पूछा, "राहुल तू देख रहा है ढँका हुआ जल पात्र ?"

"हाँ भन्ते।"

"राहुल जिनको झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती उनका श्रामण्यभाव भी ऐसा ही ढँका हुआ होता है।"

तब भगवान ने जलपात्र उधाड़ कर कहा, "राहुल तू देख रहा है यह रिक्त तुच्छ जल पात्र ?"

"हाँ भन्ते देख रहा हूँ।"

"राहुल जिनको झूठ बोलने में लज्जा नहीं आती उनका श्रामण्यभाव इसी

प्रकार रिक्त तुच्छ होता है । इस लिये राहुल मैं मजाक में भी झूठ नहीं बोलूंगा, यह सीखना चाहिए ।[९] भगवान ने मजान में भी झूठ न बोलने का राहुल को उपदेश दिया ।

शुरू के दिनों में राहुल भगवान के साथ भिक्षाटनार्थ जाया करते थे । एक समय भगवान श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे । पुर्वान्ह समय चीवर पहन पात्र ले भगवान श्रावस्ती में भिक्षार्थ प्रविष्ट हुये । राहुल भी अपना पात्र ले भगवान के पीछे पीछे हो लिये । उन्हें पीछे पीछे आता देख भगवान बोलें,

" राहुल किसी भी प्रकार का रूप क्यों न हो, यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है । इस प्रकार अर्थ सहित सम्मेक प्रज्ञासे देखना चाहिए । "

राहुलने पूछा–" क्या भगवान रूप के ही बारे में कह रहे है ! "

" राहुल रूप भी, वेदना भी, संज्ञा भी, संस्कार भी और विज्ञान भी, राहुल केवल रूप ही नहीं, इन सबके बारे में वहीं कहा जाता है । "

राहुल भिक्षाटन के पश्चात भगवान का उपदेश मन में रख पालथी मार एक वृक्ष के नीचे स्मृति को उपस्थित कर बैठे गये । आयुष्मान् सारिपुत्र ने उन्हे ध्यान लगाये देख कहा, " राहुल आनापानसति भावना करो । वह महान् फलदायनी होती है !"

राहुल शाम के समय भगवान के पास गये और आनापानसति ध्यान के संबंध में पूछा । भगवान ने विस्तृत रूपसे समझाया ।[१०] कहा जाता है कि यह उपदेश भगवान ने राहुल के अठारहवें वर्ष में दिया था । इसी विषय पर एक अन्य अवसर पर श्रावस्ती में ही राहुल ने भगवान से पूछा था ।

" भन्ते ! अच्छा हो यदि भगवान मुझे संक्षिप्त उपदेश दें ?"

भगवान ने पूछा, " राहुल तू क्या समझता है, रूप नित्य है या अनित्य ?"

" भन्ते ! अनित्य है ।"

" जो अनित्य है वह दुःख है या सुख ?"

" भन्ते ! दुःख है ।"

" जो अनित्य है, दुःख है, विपरिणाम धर्म है, इसलिये बुद्धिमान को यह नहीं समझना चाहिये कि यह मेरा है, यह मैं हूँ और यह मेरी आत्मा है ।"

" भन्ते ऐसा नहीं समझना चाहिये ।"

भगवान ने पूछा, " श्रोत अनित्य है या नित्य ?"

राहुलने उत्तर दिया– "भन्ते अनित्य है।"

"घ्राण नित्य है या अनित्य है ?"

"अनित्य है, भन्ते।"

"जिव्हा नित्य है या अनित्य ?"

"भन्ते अनित्य है।"

"शरीर नित्य है या अनित्य ?"

"अनित्य भन्ते।"

"मन नित्य है या अनित्य ?"

"अनित्य है भन्ते।"

"जो अनित्य है वह दु:ख है या सुख ?"

"भन्ते दु:ख है।"

इसी प्रकार इंद्रियों के विषयों को भी अनित्य बता भगवान ने राहुल को उपदेश दिया। [११]

भगवान ने संघ और समाज की सुविधा असुविधा का ख्याल कर समय समय पर भिक्षुओं के लिये विनयों का विधान किया और अनुभवों के तराजू में तोल कर बनाये हुये नियमों में आवश्यकता के अनुसार फेर बदल भी किया।

एक समय राहुल शाम को कोशंबी पहुंचे। उस वक्त भगवान बदरिकाराम में विहार करते थे। नये विनय के विधान के संबंध में राहुल को बताया गया। उस नियम के अनुसार कोई भी श्रामणेर उपसंपन्न भिक्षु के साथ एक ही बिहार में नहीं ठहर सकता था। राहुल को उस दिन कहीं भी सोने का स्थान नहीं मिला। स्थान के अभाव से उन्हें सारी रात भगवान के शौचालय में बितानी पड़ी। नये नियम खण्डित न हो इसी कारण उनको ऐसा करना पड़ा था। दूसरे दिन सबेरे भगवान ने राहुल को शौचालय में पाया। उन्होंने इसके बाद नियम में संशोधन किया। राहुल के प्रति अपना कर्तव्य न निभाने के कारण भगवान ने सारिपुत्र को दोषी ठहराया, क्यों कि वे राहुल के उपाध्याय थे।

एक दूसरे अवसर पर काफी समय के बाद विहार में सोने का स्थान न पा सकने के कारण राहुल को सारी रात खुले आकाश में भगवान की कुटी के सामने बितानी पड़ी। उस विहार में उनका स्थान था परंतु बाद में आये हुये भिक्षुओं ने उसे घेर लिया था। खुले आकाश में अकेले राहुल को देख विशाल हाथी का रूप धारण कर मार उनके सामने आया और उन्हें डराने हेतु जोर से चिल्लाया परंतु मार का प्रयत्न बेकार हुआ। कहा जाता है कि यह राहुल के अर्हत् पद प्राप्तिका आठवां वर्ष था। [१२]

भगवान श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। एकांत में बैठे भगवान को यह ख्याल आया कि विमुक्ति पाने के लिये अब राहुल परिपक्व हो गया है। क्यों न मैं जाकर उसे आश्रवों के क्षय के लिये उपदेश दूं ?

भोजन के उपरान्त भगवान ने राहुल को संबोधित किया, "राहुल बैठने का आसन लो। दिवा विहार के लिये अंधवन जावूंगा।"

"हां भन्ते !" कह राहुल ने आसन लिया और भगवान के पीछे पीछे चलने लगे तो देवतागण चिल्ला उठे– "आज भगवान राहुल को आश्रवों के क्षय के लिये उपदेश देंगे।"

तथागत एक वृक्ष के नीचे बीछे आसन पर विराजमान हुये। राहुल भी उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। भगवान ने राहुल को इंद्रिय और उनके विषयों की असारता का उपदेश दिया। "संक्षेप में यह मेरा नहीं है, न मैं ही यह हूँ और न यह मेरी आत्मा है।" उपदेशोपरांत राहुल का चित्त आश्रवों से विमुक्त हुआ और उन्होंने अर्हत् पद प्राप्त कर लिया। "जो भी समुदय धर्म है वे सब निरोध धर्म है।"[१३] राहुल की प्रशंसा में भगवान ने बाद में यह घोषणा की थी कि शिक्षा कर्मियों में राहुल अग्र है।

कहा जाता है कि राहुल के जन्म के समय उनके पिता सिद्धार्थ कुमार राजकीय उद्यान में आमोद प्रमोद मना रहे थे। पुत्रप्राप्ति का समाचार सुनते ही उन्होंने गृहत्याग का संकल्प किया। राहुल के जन्म की बात सुन उनके मुख से निकल पड़ा था, "राहुल जातो, बंधनं जातं, राहुल पैदा हुआ, बंधन पैदा हुआ।"[१४]

राहुल अपने सहधर्मियों के बीच राहुलभद्र या भाग्यवान राहुल के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे। इस संबंध में वे स्वय कहते हैं, "मैं इस नाम को संपद करता हूँ क्यों कि मैं बुद्ध का पुत्र हूँ और अर्हत् भी हूँ।"[१५]

राहुल नियमित रूपसे अपनी माता को देखने जाया करते थे। एक बार जब वे उनसे मिलने गये तो उनसे कहा गया कि वे उनसे नहीं मिल सकते। उस समय राहुलमाता वायुफुल्लता की बीमारी से पीड़ित थीं। राहुल को बताया गया कि घर में इस प्रकार की पीड़ा होने पर आम के रस में चीनी मिलाकर खाने से पीड़ा दूर होती थी। जाकर राहुल ने सारिपुत्र को बताया। उन्होंने राजा प्रसेनजित से वह प्राप्त किया था। जब प्रसेनजित को पता चला कि आम का रस किसके लिये मांगा जा रहा है तो वे प्रति दिन भेजने लगा।

राहुल के लिये सारिपुत्र के मन में एक विशेष स्थान था क्यों कि एक तो

वे भगवान बुद्ध के पुत्र थे और दूसरे स्वयं उनके शिष्य थे।

राहुल का देहांत सारिपुत्र के बाद और भगवान बुद्ध से पहले हुआ था। कहा जाता है कि वे बारह वर्ष तक शय्या पर नहीं सोये थे।[१६]

---

१. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा १. ८२।

२. बुद्ध और उनका धर्म पृ. ३१ हिन्दी अनुन. भदंत आनंद कौसल्यायन।

३. निदानकथा-जातक अट्ठकथा।

४. सुत्तनिपात अट्ठकथा १.३४०।

५. धम्मपद अट्ठकथा १. ९८।

६. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा १. १४५।

७. जातक पृ. ३३०, प्रथम खण्ड-भदंत आनंद कौसल्यायन।

८. जातक पृ. २५६, प्रथम खण्ड- भदंत आनंद कौसल्यायन।

९. अम्बलट्ठिकराहुलोवाद सुत्त-मज्झिमनिकाय।

१०. महाराहुलोवाद सुत्त-मज्झिमनिकाय।

११. राहुलसंयुत्त-संयुत्तनिकाय।

१२. धम्मपद अट्ठकथा ४. ६९।

१३. चूळराहूलोवाद सुत्त-मज्झिमनिकाय।

१४. धम्मपद अट्ठकथा १. ७०।

१५. उभयेनेव सम्पन्नो, राहुलभद्दो ति मं विदू।
उन्यह्मि पुत्तो बुद्धस्त, मं च धम्मेसु चक्खुमा ॥ थेरगाथा।

१६. धम्मपद अट्ठकथा ३. ७३६।

★

अप्सराओं के लिये ब्रह्मचर्य का आचरण

★

नंद

(ई. पू. ५२७)

★

पालि साहित्य में नन्द का अद्वितीय व्यक्तित्व है। इस प्रकारका उदाहरण सारे त्रिपिठक साहित्य में शायद ही देखने को मिले। इसी कारण महाकवि अश्वघोष ने उन पर महाकाव्य की रचना कर उनके जीवन को और भी सरस बना दिया है।

आनंद अन्य भिक्षुओं की अपेक्षा अधिक भाग्यवान थे। पर नंद दूसरे अर्थ में उनसे भी अधिक भाग्यशाली कहे जा सकते हैं। आनंद भगवान के चचेरे भाई थे। किन्तु भगवान की माता और नंद की माता भिन्न होने के बावजूद दोनों के पिता एक शुद्धोदन ही थे।

सिद्धार्थ गौतम के जन्म के सप्ताह पश्चात उनकी माता महामाया देवी का देहांत हो गया था। उसकें आसपास महाप्रजापति गौतमी ने नंद को जन्म दिया। उसने नंद को दाई को सौप कर उनके हिस्से का दूध सिद्धार्थ कुमार को पिलाया था। [२]

यहाँ यह जिज्ञासा की जा सकती है कि अपने बच्चे को दाई के हवाले कर बहन के (सौत) के बच्चे को कोई माँ दूध पिला सकेगी यह बात संदेह से परे नहीं है। यह कार्य सामान्य स्त्री के लिये असंभवसा प्रतीत होता है। दूसरी बात यह कि दोनों को भी एक साथ दूध पिलाया जा सकता था। यह एक जिज्ञासा मात्र है। जो बात त्रिपिटक में लिखी है वही प्रामाणिक मानी जाती है।

नंद ने अपना बाल्यकाल और अध्ययन सिद्धार्थ कुमार तथा आनंद आदि भाईयों के साथ समाप्त किया और उन्हींके साथ तारुण्य में भी प्रवेश किया किन्तु तारुण्य का रस लेने के पूर्व ही भगवान बुद्ध नये मार्ग का अण्वेषण कर कपिलवस्तु पधारे जिससे नंद को गृहत्याग कर भगवान का अनुकरण करना पड़ा। यह उनके प्रति भगवान की विशेष दया का फल था।

शाक्यों के और विशेषत: अपने पिता शुद्धोदन के आग्रह के कारण भगवान

बुद्ध राजगृहसे कपिलवस्तु पधारे थे । वहाँ पहूंचने के तीसरे रोज तथागत नंद के घर गये । वहाँ उस दिन नंद के अभिषेक और जनपद कल्याणी । नंदा के साथ विवाह का उत्सव जोरों पर था । भोजन ग्रहण कर भगवान ने नंद की भलाई की बात सोची । जिस अमृत पान का अनुभव स्वयं भगवान ने किया था उससे अछूता वे नंद को रखना नहीं चाहते थे ।

भगवान ने अपना पात्र नंदकुमार को दे अपने पीछे पीछे विहार चलने का संकेत किया । नंद ने उनका अनुकरण किया । महल के बाहर जा उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो जनपद कल्याणी नंदा खिडकी से देख रही थी । उसने कोमल स्वर से प्रार्थना की,

"आर्य पुत्र जल्दी लौट आना ।"

बिहार पहुंचने पर भगवान ने नंद को प्रव्रजित होने का प्रस्ताव किया । यह भगवान बुद्ध का कथन था । नंद नहीं, नही कह सके । इच्छा न होने पर भी उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की ।

भगवान की बात रखने के लिये नंद प्रव्रजित तो हो गये पर जैसे जैसे दिन बीतते गये वैसे वैसे वे अपनी प्रिया की याद से दुःखी होते गये । उनके मन में पश्चाताप एवं संताप होने लगा । वे दिन प्रति दिन मंद बुद्धि और निराश होने लगें । उनके शरीर पर इसका बुरा असर पड़ने लगा ।

भगवान एक कुशल वैद्य की तरह नंद के हर व्यवहार पर निगाह रखे थे । एक दिन भगवान नंद को हिमालय ले गये । रास्ते में एक मरी हुई बंदरी को दिखा कर उन्होंने नंद से पूछा,

"क्या जनपद कल्याणी इस से भी अधिक सुन्दर है ?"

नंद ने उत्तर दिया, "इस से भी बहुत अधिक सुन्दर है ।"

एक समय भगवान अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम श्रावस्ती में विहार करते थे । नंद भी वहीं थे । उन्होंने कई भिक्षुओं से अपनी मन की बात कही, "आयुष्मानों मैं अनिच्छा से ब्रह्मचर्य का आचरण कर रहा हूँ । इसमें मेरा जरा भी मन नहीं लग रहा है । मैं इस लायक नहीं हूँ ।"

एक भिक्षु ने इस संबंध में भगवान से कहा । भगवान ने उससे कहा, "भिक्षु जाओ और मेरे वचन से नंद को कहो कि शास्ता उसे बुलातें हैं ।"

नंद भगवान के पास गये । अभिवादन कर एक ओर बैठ गये । तब भगवान ने उनसे पूछा,

"नंद क्या तुमने यह कहा है कि तुम अनिच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन कर

रहे हो ? और उस में तुम्हारा जरा भी मन नहीं लगता है तथा तुम इसके अयोग्य हो ?"

"हाँ भन्ते ।"

भगवान ने पुनः पुछा, "इसका क्या कारण है ?"

"भन्ते शाक्यनी, जनपद कल्याणी, जब मैं घरसे निकला तो केश खुले छोड़, मुझे देख बोली थी, आर्य पुत्र जल्दी लौट आना । [१] भन्ते इसी कारण मेरे मन में चैन, शान्ति नहीं है ।"

नंद को बाहों से पकट भगवान जेतवन से अंतर्धान हो तावंतिस लोक में प्रकट हुये । वहाँ मुर्गी के पैरों के समान छोटे छोटे पैरों वाली सुन्दरतम पांच सौ अप्सराएँ इन्द्र की सेवा में उपस्थित थीं । उन्हें दिखा कर भगवान ने नंद को संबोधित किया,

"तुम देख रहे हो इन पांच सौ अप्सराओं को !"

"हा भन्ते देख रहा हूँ ।"

"ये अप्सराएँ सुन्दर है या शाक्यानी, जनपद कल्याणी ?"

"जनपद कल्याणी इनके सामने कुछ भी नहीं है ।" नंद ने उत्तर दिया।

भगवान ने कहा, "नंद इन अप्सराओं की प्राप्ति के लिये ब्रम्हचर्य का पालन करो ।"

भगवान नंद को लेकर जेतवन लौट आये ।

यह घटना जेतवन वासी भिक्षुओं को ज्ञात हुई तो नंद के सहायक भिक्षु उनसे कहने लगे,

"आयुष्मान् नंद, क्या तुम किराये पर ब्रम्हचर्य का पालन कर रहे हो ? सुना है तुम अप्सराओं की प्राप्ति के लिये ब्रम्हचर्य का आचरण कर रहे हो ?"

यह सुन नंद बड़े लज्जित हुये । उन सबसे बचने के लिने वे एकांत स्थान चले गये । वहाँ अप्रमाद से उन्होंने परिश्रम किया । वे योगाभ्यास में रत हो विहार करने लगे । अचीर काल में ही वे आश्रवों पर विजय पा अर्हत् हुये । भगवान अपने चित्त से नंद के चित्त की स्थिति जान गये । उस वक्त भगवान के श्रीमुख से उदान निकला,

"नंद आश्रवों का क्षय कर अनाश्रव हो गया है । चित्त विमुक्ति पा स्वयं अभिज्ञा को समझ विहार कर रहा है ।"

रात्रि के बीत जाने पर दूसरे दिन नंद भगवान के पास गये । अभिवादन

कर एक ओर बैठ उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि अब उन्हें अप्सराओं के वचन से मुक्त किया जाये ।[१]

नंद के बारे में भिक्षु परिषद में स्वयं भगवान ने घोषित किया कि इंद्रियों पर संयम रखने वाले भिक्षुओं में नंद सर्वश्रेष्ठ हैं ।

नंद की प्रशंसा में तथागत ने आगे कहा, "भिक्षुओं ! नंद बलवान है । सम्मेक बोलता है, नंद प्रशंसनीय है । भिक्षुओं और तो और नंद इंद्रियों पर संयम रखने वाला, भोजन में मात्रा जानने वाला है और स्मृति में संपन्न है ।"

भगवान श्रावस्ती में ही विहार करते थे । उस समय आयुष्मान् नंद रंगीन किनारे वाला चीवर पहन, आँखों में अंजन लगा और चमचमाता पात्र ले भगवान के पास गये । उन्हें अभिवादन करने के उपरांत एक ओर बैठ गये । उन्हें देख भगवान बोले,

"नंद इस प्रकार का चीवर पहनना, आँखों में अंजन भरना और आकर्षक चमकीला पात्र धारण करना तुम्हारे जैसे कुल पुत्र, श्रद्धा से गृहत्यागी प्रव्रजित के लिये अनुकूल नहीं है । यह तुम्हारे लिये अशोभनीय है । आरन्यिक, पिण्डपातिक और पांसुकूलिक हो काम की अनपेक्षा कर विहरना अधिक योग्य है ।"

कहा जाता है कि उसी दिन से भगवान के उपदेशानुसार वे आचरण करने लगे ।[५] अन्यत्र[६] कहा गया है कि नंद ने जानबूझ कर उक्त व्यवहार किया था । वे चाहते थे कि भगवान उनके व्यवहार की आलोचना करें और कोई नया उपदेश दें ताकि जीवन के शेष दिन उसी के मुताबिक व्यतीत कर सकें ।

जिस दिन नंद का विवाह जनपद कल्याणी नंदा के साथ होने जा रहा था उसी दिन भगवान ने उन्हें प्रव्रजित किया था । नंदा ने नंद की बड़ी प्रतीक्षा की और जब किसी भी तरह की आशा नहीं रही तो वह भी महाप्रजापति गौतमी के पास प्रव्रजित हो गई । इस प्रकार कितनी ही शाक्य सुन्दरियाँ अपने पति के वा भावी पति के प्रव्रजित हो जाने पर स्वयं भी उसी मार्ग पर आरूढ़ हुई थीं।

भगवान ने नंद को बड़े प्रेम और अनुकंपा से साथ प्रव्रजित किया था और जब प्रव्रजित जीवन से वे ऊब गये तो भगवान ने मनोवैज्ञानिक ढंग से उनके चित्त के विकार दूर किये ।

नंद के हृदय में भी भगवान के प्रति अपार प्रेम और असीमित श्रद्धा थी । वे कहते है,

अयोनिसो मनसिकारा, मण्डलं अनुयूंजिसं ।
उद्धतो चपलो चासि, कामरागे न अहितो ॥
उपायाकुसलेनाहं, बुद्धे आदिच्चबंधुना ।
योनिसो परिपज्जित्वा, भवे चित्तं उदब्बहिं'ति । [७]

१, सौंन्दरनन्द ।
२. अंगुत्तरनिकाय अट्ठकथा १. १८६ ।
३. नन्द सुत्तं–उदान–खुद्दकनिकाय ।
४. नन्द सुत्तं–अंगुत्तर निकाय । भाग ३
५. नन्द सुत्तं–संयुत्तनिकाय, भाग २ : ३
६. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा २. १७४ ।
७. नन्दथेरगाथा–थेरगाथा–खुद्दकनिकाय ।

★

शाक्य कुमारों के सेवक विनय सभा के नायक

★

उपालि

(ई. पू. ५२७)

★

भिक्षु संघ में कोई भी सभासद गोत्र या जाति अथवा उम्र के कारण ज्येष्ठ नहीं माना जाता है। जो भिक्षु उपसंपदा में बड़ा हो वही ज्येष्ठ माना जाता है। वही प्रथम गौरव आदर सत्कार का अधिकारी होता है। इसी बात को ध्यान में रख प्रव्रज्या के समय आनंद आदि शाक्य तरुणोंने उपालि को ही प्रथम दीक्षा देने की भगवान से प्रार्थना की थी ताकि वे सभी उपालि को अभिवादन कर सके जिससे शाक्य वंश में पैदा होने का उनका अभिमान नष्ट हो [1] जाये।

उपालि कपिलवस्तु में एक नाई परिवार में जन्में थे। तारुण्य में प्रवेश करने के उपरांत वे शाक्य तरुणों की सेवा करने लगे। जिस समय अनुरुद्ध और उनके साथी गृहत्याग का संकल्प कर प्रव्रजित होने के लिये अनुपिया रवाना हुये तो उनके सेवक के तौर पर उपालि भी उनके पीछे पीछे निकले। कुछ दूर यात्रा करने के बाद एक बन में पहुंच सभी शाक्य कुमारों ने अपने बहुमुल्य हीरे माणिक के जेवरात उपालि को दे कपिलवस्तु लौट जाने की आज्ञा दी जिससे वह उन जेवरों से चैन की जिंदगी गुजार सके। उपालि ने भी प्रव्रजित होने की इच्छा प्रकट की। किन्तु शाक्य कुमारों ने उन्हें अनुमति नहीं दी।

कुमारों के चले जाने पर उपालि ने कीमती जेवरों की गठ्ड़ी हाथ में ली और सोचा, " यदि मैं इसे लेकर कपिलवस्तु चला गया तो जान की खैर नहीं।" शाक्य लोग मुझ पर संदेह करेंगे। मुझे कुमारों का हत्यारा समझ मुझको जिंदा गाड़ देंगे। शाक्य बड़े अभिमानी और क्रोधी होते है।' उन्होंने वह गठड़ी रास्ते के किनारों एक पेड़से बांध दी और कुमारों के पीछे पीछे अनुपिया जा पहुंचे। शाक्य कुमारों की याचना पर भगवान ने प्रथम उपालि को दीक्षा दी और फिर कुमारों को। उनके उपाध्याय कप्पितक स्थविर थे। [2]

शुरू के दिनों में उपालि भगवान के पास ही ध्यान भावना का अभ्यास करते रहे। पश्चात अधिक योगाभ्यास करने हेतु जंगल में जाने की भगवान से आज्ञा मांगी। भगवान बुद्ध ने उन्हें अनुज्ञा नहीं दी। भगवान ने सोचा कि

यदि उपालि वास करने चला जायेगा तो वह केवल योगाअभ्यास ही कर सकेगा जब कि यहाँ समाज में रहते योगाभ्यास के साथ साथ धर्म का ज्ञान भी प्राप्त कर सकेगा। उपालि ने भगवान का उपदेश स्वीकार किया।[३] योगाभ्यास कर अचीरकाल में ही उन्होंने अर्हत् पद प्राप्त कर लिया। बाद में स्वयं भगवान बुद्ध ने ही उन्हें सारे विनय पढाये।[४]

उपालि विनय के संबंध में इतने पारंगत हो गये थे कि संघ उन्हें विनय के लिये प्रामाणिक मानने लगा। विनय के शिखर पर पहुंच गये थे 'विनये अग्गानिक्खित्तो',[५] यह अज्जुन, मारूकच्चक और कुमारकाश्यमाता के उदाहरण से स्पष्ट है। इन मामलो के संबंध में उपालि के निर्णय की भगवान ने बड़ी प्रशंसा की थी।

भिक्षु अज्जुन वैशाली के रहने वाले थे। उनके दायकों में जमीन को लेकर मतभद था। अज्जुन ने मध्यस्थ हो उनका बटवारा करा दिया था। उनके बटवारे से एक पक्ष नाखुश था। अज्जुन को दोषी ठहरा कर वह आनंद के पास शिकायत ले गया। फैसले के लिये यह मामला उपालि के सामने उपस्थित किया गया। परीक्षा करने के बाद उन्होंने अज्जुन के पक्ष में निर्णय दिया जो भगवान के लिये भी प्रशंसनीय था।[६]

एक समय भगवान जेतवन श्रावस्ती में विहार करते थे। आयुष्मान् उपालि उनके पास जा अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। उन्होंने विनय के संबंध में भगवान से कई प्रश्न पूछे,

"भन्ते कितने अंगोंसे समन्वित भिक्षु को जीवनभर किसी अन्य भिक्षु के आश्रय से रहना चाहिये ?"

भगवान बोले, "जो उपोसथ न जानता हो, जो उपोसथ कर्म न जानता हो, प्रातिमोक्ष और उसका उद्देश न जानता हो और जिसकी उपसंपदा को पूर्ण पांच वर्ष न हुये हो, ऐसे भिक्षु को किसी दूसरे के आश्रय से रहना चाहिये।"

इसी प्रकार अपराधी भिक्षु को दण्डित करने के संबंध में भगवान से पूछते है, "भन्ते ! कितने अंगोंसे समन्वित भिक्षु को दण्ड देना चाहिये ?"

भगवान प्रतिपादन करते है, "जो निर्लज्ज हो, जो मूर्ख हो, जो अपने कर्तव्य से पतीत हो, और जो मिथ्या दृष्टि वाला हो ऐसे भिक्षु को दण्डित करना चाहिये।"[७]

परंपरा के अनुसार संघ के नियम उपालि से खास संबंध रखते है। ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते है जब उपालि विनय विधान को लेकर प्रश्न करते हैं, उनमें संशोधन कराते है तथा नये नियमों का विधान कराते हैं।

किसी अपराधी भिक्षु को दण्डित करने पर वे इसका बहुत ख्याल करते थे कि उनके निर्णय के कारण संघ में असंतोष तो नहीं फैलता। समय समय पर वे भगवान से विनय नीति पर परामर्श करते। किस प्रकार के सदस्य को दण्ड देना उचित है और किस प्रकार के सदस्य को दण्डित करना अनुचित है आदि आदि।

कहा जाता है कि भगवान के जीवन काल में भी भिक्षु लोग उपालि के पास विनय सीखने पहुंचते थे। वे इसके लिये अपना भाग्य समझते थे। भिक्षु लोग उपालि को अपना जिग्री दोस्त समझते थे। वे निसंकोच अपने सारे दोष उनसे कह सकते थे और अपनी किसी कठिनाई के संबंध में उनके मार्गदर्शन की कामना करते थे। यदि किसी भिक्षु के चीवर चोरी चले गये हो तो वह रक्षार्थ उपालि के पास ही पहुंचता।[८]

भगवान के जीवन काल में ही उन्होंने विनय परंपरा की रक्षा के लिये विनय समझाने वाले विनय धरों को सुविधा के लिये कुछ सुझाव दिये थे।[९]

विनय की परंपरा कायम रखने के हेतु उपालि ने दासक को अपना शिष्य बनाया। दासक वैशाली का ब्राह्मण था। प्रथम बार उसके साथ उपालि की मुलाखात बालुकाराम में हुई थी। उसने उपालि के साथ खूब चर्चा की और अंत में अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्हीं के पास दीक्षित हुआ। दासक स्थविर ने उस समय का सारा त्रिपिटक सीख लिया। बाद में उसने सोणक को प्रव्रजित किया। उपालि के देहांत के पश्चात दासक विनय धरों में प्रमुख माने जाते थे।[१०] उनके हजार क्षीणश्रव, त्रिपिटक धारी शिष्यों में सोणक स्थविर प्रधान थे।[११] उनके शिष्य सिग्गव, सिग्गव के शिष्य अशोकगुन मोग्गलिपुत्र तिष्य और तिष्य के शिष्य अशोक पुत्र महिंद हुये। इस प्रकार विनय की परंपरा सीधी उपालि से चली आई।

तथागत के महापरिनिर्वाण के तुरंत बाद राजगृह की प्रथम संगीति में जो स्थान आनंद को धर्म के संबंध में प्राप्त हुआ, वहीं स्थान विनय के संबंध में उपालि को प्राप्त था। विनय को लेकर महाकाश्यप द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उन्होंने उत्तर दिये।

मगध का राज वंश पिता की हत्या कर राजगद्दी प्राप्त करने में ख्याती प्राप्त है। अजातशत्रु अपने पिता राजा बिंबिसार को मार के राजा बना। उसके बाद वह प्रथम बार भगवान से भेट करने गया था। भिक्षुओं की परिषद से घिरे महाकारुणिक भगवान को देख उसने सोचा, "मेरा पुत्र उदाई भी इसी प्रकार शांत स्वभाव का होता तो कितना अच्छा होता?"[१२] क्यों कि अजातशत्रु को भय था कि कहीं उसका पुत्र उदाई भी उसी के समान अपने पिता को मार

राज्य न छीन ले ।[१३] राजा का भय साकार हुआ । उदाई ने अजातशत्रु की हत्या की और स्वयं मगध का राजा बना ।

महामति उपालि का देहांत उदाई के राज्य काल के छठे साल में हुआ ।[१४] उदाई के सोलह वर्ष राज्य करने के बाद उसके पुत्र अनुरुद्धक उसे मार मगध का शासक बना ।[१५] वह अपने पुत्र मुण्डक द्वारा मारा गया । मुण्डक को उसके पुत्र नागदासक ने कत्ल किया । इसके उपरांत जनता ने विद्रोह किया और नागदासक को मगध की गद्दी से हटा सुसुनाग को गद्दी पर बिठाया । नागदास के साथ पितृ घातक वंश का भी अंत हुआ ।

मगध के तीन राजाओं का शासन देखने का सौभाग्य उपालि को प्राप्त हुआ था । इससे प्रतीत होता है कि उनकी उम्र काफी लम्बी थी । आनंद लगभग एक सौ बीस वर्ष तक जिये । इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि उपालि एक सौ पचास वर्ष की उम्र तक जीवित रहे होंगे ।

---

१. विनयपिटक २.१८२ ।
२. विनयपिटक ४.३०८ ।
३. उपालि सुत्तं–अंगुत्तरनिकाय ।
४. थेरगाथा अट्ठकथा १.३६० ।
५. दीपवंस ।
६. विनयपिटक ३.६६–७ ।
७. उपालि पंचकं–परिवार–विनयपिटक; उपालि वग्गो-अंगुत्तरनिकाय ।
८. रमणीयविहारी थेर–थेरगाथा ।
९. समंतपासादिका १.३७ ।
१०. महावंस ५ ।
११. महावंश हिन्दी पृ. २.२७ भदंत आनंद कौसल्यायन ।
१२. दीघनिकाय १.५० ।
१३. दीघनिकाय अट्ठकथा १.१५३ ।
१४. दीपवंस ५ ।
१५. महावंस ५ ।

★

जो पच्चीस वर्ष तक नहीं सोये

★

अनुरुद्ध

(ई. पू. ५२७)

★

भगवान बुद्ध राजगृह से कपिलवस्तु पधारे। शाक्यों ने उनका और उनके शिष्यों का बड़ा सत्कार किया। उसी यात्रा में राहुल और नंद प्रव्रजित हुये। इसके पश्चात भगवान के अद्वितीय व्यक्तित्व तथा नूतन जीवन-दर्शन ने विशेषतः शाक्य तरुणों के विचारों को ऐसे जोर का झटका दिया कि जब उन्होंने अपने आपको इस नई धारा में बहा दिया। उस युग में यह साधारण क्रांती नहीं रही होगी। भगवान के क्रांतीकारी विचार और भी स्पष्ट हुये उन्होंने युगों की परंपरा तोड़ भिक्षुणी संघ की स्थापना की। घर आँगन, चूल्हा चौका और पति बच्चों में ही सीमित भारतीय नारी के सामने अब एक विशाल क्षेत्र खुला था। भगवान आज की नारी शिक्षा और स्वातंत्र्य के जन्मदाता थे।

हजारों की तादाद में शाक्य तरुण प्रव्रजित हुये तो महानाम शाक्य से नहीं रहा गया। उनको इस बात की चिन्ता थी और कमी महसूस हो रही थी कि उनके परिवार से कोई तरुण प्रव्रजित नहीं हुआ। इसी कारण उन्होंने अपने छोटे भाई अनुरुद्ध से सलाह की कि दोनों में से एक कोई भी प्रव्रज्या ग्रहण करें।

अनुरुद्ध ने कहा, "आप चले जाइये। मैं घर के काम काज संभालूंगा।"

"ठीक है। तुम पहले घर के काम को समझ लो। प्रथम वर्षा के बाद खेत जोतना होता है, फिर बीज बोना पड़ता है। फसल के बढ़ने पर उसमें की घास साफ करनी होती है, पानी देना होता है। फसल पक जाने पर उसे काटना पड़ता है। उसे शुद्ध कर घर लाना होता है। घर लाकर अनाज को कोठी में भर देना होता है। फिर अगले वर्ष इसी प्रकार करना होता है, फिर अगले वर्ष इसी प्रकार, फिर अगले वर्ष इसी को दोहराना पड़ता है।" इसी तरह महानाम अपने भाई अनुरुद्ध को गृहस्थी के बाहरी कामों से लेकर भीतरी कामोंतक समझाता गया। सुन कर अनुरुद्ध का दिमाग चकरा गया। अबतक गृहस्थी का सारा कार्य महानाम ही करते आ रहे थे। अनुरुद्ध का काम था केवल सुख विलास भोगना, उन्होंने ज्येष्ठ भाई से कहा,

"यह सब मुझसे नहीं होने का। आप ही घर में रहें। मैं ही प्रव्रजित हूँगा।"

ये दोनों भाईयों की आपस की गुप्त मंत्रणा मात्र थी। माता की अनुमति प्राप्त करना इतना सरल कार्य नहीं था क्योंकि माता माता ही होती है। वह अंत में इस बात पर राजी हो गई कि उसका मित्र भद्दिय प्रव्रजित होता है तो अनुरुद्ध को भी अनुज्ञा प्राप्त होगी। माता का विश्वास था कि न कभी भद्दिय प्रव्रजित हो सकेगा और न ही अनुरुद्ध को अनुमति देने की आवश्यकता पड़ेगी।

भद्दिय अनुरुद्ध के जिगरी दोस्त थे वे कपिलवस्तु के राजवंश में जन्में थे। उनकी माता कालिगोधा अपने समय की प्रसिद्ध महिला थी। अनुरुद्ध भद्दिय के पास जाकर बोला,

"मित्र मेरी प्रव्रज्या तुम पर निर्भर करती है। तुम प्रव्रज्या ग्रहण करोगे तो मुझे भी अनुज्ञा मिलेगी। नहीं तो नहीं।"

"यदि ऐसी बात है तो सात वर्ष प्रतीक्षा करो।" भद्दिय ने उत्तर दिया।

"नहीं मित्र यह बहुत लम्बा समय है।"

"तो फिर छ: वर्ष ठहरो।"

"यह भी कम नहीं है।"

अन्त में भद्दिय सात महीने पर उत्तर आये। परंतु अनुरुद्ध को सात महीने भी बहुत लबे लगे। इसके बाद सात सप्ताह और फिर अन्त में सात दिन पर मामला तय हो गया। उनके साथ आनंद, भगु, किम्बिल, देवदत्त और उपालि भी प्रव्रजित हुये।

भगु शाक्य वंशीय थे। देवदत्त सुप्रबुद्ध और शुद्धोदन की बहन अमिता का पुत्र था। यशोधरा देवदत्त की बहन थी जो सिद्धार्थ कुमार से ब्याही गई थी। बाद में देवदत्त भगवान बुद्ध का भारी विरोधक सिद्ध हुआ। किम्बिल भी कपिलवस्तु के ही शाक्य पुत्र थे और उपालि उन कुमारों की सेवा में रत नाई थे। सातों कपिलवस्तु से भगवान की खोज में अनुपिया गये। वहीं वे सातों प्रव्रजित हो गये। वर्षावास के लगते ही अनुरुद्ध ने दिव्य चक्षु प्राप्त की। इसके बाद भगवान बुद्ध ने उनकी बड़ी स्तुति की और कहा कि दिव्य चक्षु प्राप्त भिक्षुओं में अनुरुद्ध अग्र है।

प्रव्रज्या के कुछ ही दिनों के अनंतर अनुरुद्ध प्राचीन वंसदाय में रहने चले गये। वहां एकांत में रहते वक्त उनके मन में वितर्क आया। वे सोचने लगे, "यह धर्म अल्पेच्छा जनों के लिये है न कि बहु इच्छावानों के लिये, यह धर्म संतुष्ट व्यक्ति के लिये है, असंतुष्ट व्यक्ति के लिए नहीं, एकाग्र चित्त

वाले के लिये है, प्रयत्नशील आदमी के लिये है, एकांत वासी के लिये है, यह धर्म स्मृतिवान का है न कि मूढ़ का, यह धर्म प्रज्ञावानों का है न कि अप्रज्ञावानों का।" [१]

उस समय भगवान भग्गु में विराजमान थे। सुसुमागिरि के भेसलावन मृगदाय में उन्होंने अनुरुद्ध के चित्त वितर्क को जान लिया। वे अनुरुद्ध के पास गये। भगवान ने उनकी बड़ी तारीफ की और उस विषय पर विस्तृत उपदेश दिया। लौट कर भगवान ने वही उपदेश भग्गुवासी भिक्षुओं को भी दिया। अनुरुद्ध ने संपूर्ण वर्षावास प्राचीन वंशदाय में ही बिताया। वर्षावास के समाप्त होते होते उन्होंने समाधिस्थ हो अर्हत् पद प्राप्त कर लिया। [२]

अनुरुद्ध भगवान के चचेरे भाई थे। उनके पिता अमितोदन शुद्धोदन के छोटे भाई थे।

जिस प्रकार कोई अपने खजाने में जमा धन राशी का बड़ा ख्याल रखता है उसी प्रकार तथागत संघ के प्रत्येक भिक्षु का ख्याल करते थे, समान रुपसे और बिना किसी तरह का भेदभाव किये। उस समय अनुरुद्ध, नंदिय और किम्बिल प्राचीन वंसदाय में विहार करते थे। भगवान उनके पास पधारे। उन्होंने समाधि के संबंध में उन तीनों से प्रश्न पूछे। भगवान ने उन्हें उपदेश दिया कि समाधि का विकास करते हुये क्लेशों को कैसे नष्ट करना जाहिए। [३]

कामसुख का उपभोग कर इंद्रियों के सिथिल हो जाने पर किसी के भी लिये प्रव्रज्या भूमि में प्रविष्ट होना बहुत आसान है पर जो लोग प्रथम यौवन में ही प्रव्रजित हो जाते हैं उनके लिये इंद्रियों पर विजय पाना उतना सरल कार्य नहीं है। जो लोग प्रथम तारुण्य में प्रव्रजित होते थे वे भगवान की दृष्टि में अधिक प्रशंसनीय थे।

एक समय भगवान कोसल में नाळकपान पलासवन में रहते वक्त अभिज्ञा प्राप्त भिक्षुओं से घिरे खुले आकाश में विराजमान थे। भगवान ने भिक्षुओं से तीन बार पूछा,

"भिक्षुओं! जो कुलपुत्र मुझ में श्रद्धा होने के कारण घर से बेघर हो प्रव्रजित होते हैं वे किस प्रकार की ब्रह्मचर्य का पालन करते है?" किसीने भी उत्तर नहीं दिया। तब भगवान ने आयुष्मान अनुरुद्ध से पूछा, "अनुरुद्ध! तुम किस प्रकार की ब्रह्मचर्य में अभिरत रहते हो?"

उन्होंने भगवान के प्रति उत्तर दिया, "भन्ते! हम सच्चे प्रकार की ब्रह्मचर्य में अभिरत रहते हैं।"

"साधु! साधु!! अनुरुद्ध! यह तुम्हारे अनुकूल ही है। तुम प्रथम वय में सुन्दर यौवन में, काले केश युक्त, राज भय से, नीति के ड़र से चोर

दण्ड के भयसे और न जीविका के लिये ही घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये हो किन्तु जाति, जरा, मरण, शोक, दु:ख इन सबका अन्त करने के लिये घर से बेघर हो प्रव्रजित हुये हो। अनुरुद्ध क्या इसी श्रद्धा के कारण तुम प्रव्रजित नहीं हुये हो ?"

"हां भन्ते !" अनुरुद्ध ने उत्तर दिया। इसी प्रकार भगवान ने पूछा और उपदेश दिया। उपस्थित सब भिक्षुओं की ओर से अनुरुद्ध ने भगवान को उत्तर दिया। [४] भगवान अनुरुद्ध पर बड़े प्रसन्न हुये।

विभिन्न अवसरों पर अनुरुद्ध ने भगवान से चर्चा की। इसी प्रकार भिक्षु और गृहपतियों के साथ भी उनकी चर्चा होती थी।

भगवान जेतवनाराम में विहार करते थे। राजमहल के बढई पंचकंग ने अपने आदमी को संदेशा दे कर अनुरुद्ध के पास भेजा। उसका संदेश था, "भन्ते पंचकंग गृहपति आयुष्मान अनुरुद्ध के पैरों में सिर से वंदना कर प्रार्थना करता है, "अनुकम्पा करके आयुष्मान अनुरुद्ध दूसरे तीन भिक्षुओं के साथ गृहपति पंचकंग के घर आये। भन्ते पंचकंग गृहपति बहु करणीय है। राज कृत्यों से छुट्ठी नहो मिलती।"

रात के बीतने पर आयुष्मान अनुरुद्ध चीवर पहन पात्र ले अभियकच्चान तथा अन्य दो भिक्षुओं के साथ गृहपति पंचकंग के घर भोजनार्थ पहुंचे। भोजनो परांत गृहपति एक नीचा आसन ले एक ओर बैठ गया। उसने अनुरुद्ध से प्रश्न किया। उसके प्रश्न के उत्तर में अनुरुद्धने उसे अप्पमाणं स्थिर चित्त और महाग्गतं चित्त विमुक्ति की भिन्नता पर उपदेश दिया हैं। [५]

कोशम्बि के घोषिताराम में रहते समय एक दिन अनुरुद्ध दिवाविहार के लिये एकांत में चले गये। वहाँ उनके पास बहुत सुन्दर दिव्यांगणा पहुंची। उन्हे अभिवादन कर एक ओर खड़ी हुई बोली, "भन्ते हम मनाषकायिका दिव्यांगणा हैं। हम किसी स्थान पर ऐश्वर्य पैदा कर सकती है, किसी भी प्रकार का जैसा स्वर चाहे पा सकती है। हर प्रकार का सुख प्राप्त कर सकती हैं।"

इसके बाद उनके मन में संकल्प विकल्प आने लगे। उन्होंने मन में जो रंग सोचा वे उसी रंग की अलंकार युक्त हुई। उन्होंने अनुरुद्ध को लुभाने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकी। वे उन्हें उत्तेजित न होते देख वहीं अंतर्धान हो गई।

वे आसन से उठ भगवान के पास गये। उन्हें अभिवादन कर सारी घटना कह सुनाई। अन्त में उन्होंने भगवान से पूछा, "भन्ते किन किन धर्मो से युक्त होने के कारण स्त्रियाँ मरणोपरांत मनापकाइका दिव्यांगण के रूप में उत्पन्न होवी है ?"

भगवान का उपदेश था, "अनुरुद्ध ! माता पिता अपनी बेटी को जिसे सौपते है वह हमेशा उसी की हुई रहती है। पति का गौरवादर करती है, कातती बुनती है और घर के अन्य कार्य करती है। जो पतिके नौकरों चाकरों के कर्तव्य अकर्तव्य जानती है, जो पतिके धन की रक्षा करती है, जो त्रिरत्नों की शरण जा उपासिका होती है, शीलवती होती हैं, त्यागवती होती है। इन आठ धर्मों (गुणों) से युक्त स्त्री मरणोपरांत मनापकाइका दिव्यांगणा के रूपमें उत्पन्न होती है।"[६]

अनुरुद्ध सारिपुत्र और मौद्‌गल्यायन के साथ स्मृति प्रस्थान जैसे गहन विषय पर चर्चा किया करते थे।

अनुरुद्ध श्रावस्ती में रहते थे। वहाँ सतिपट्‌ठन के विषय पर योगाभ्यास करनें में निमग्न थें। एक दिन एकांत में बैठे उनके मन में वितर्क आया कि जिनका चारों सतिपट्‌ठानों के साथ मेल नहीं है उनका कार्य अष्टांग मार्ग से भी कोई मेल नहीं बैठता है। जो चारों सतिपट्‌ठानों से युक्त है उनका कार्य अष्टांग मार्ग से भी मेल बैठता है।

उनके चित्त की बात जान कर महामौद्‌गल्यायन वहाँ गये। उन्होंने अनुरुद्ध से पूछा, "आयुष्मान् कौन कौन भिक्षु चारों सतिपट्‌ठानों के अभ्यस्त होते है।" अनुरुद्ध ने इस प्रश्न का विस्तृत उत्तर दिया।

वे एक बार श्रावस्ती में सुतनु नदी के किनारे वास करते थे। वहाँ उनके पास बहुतसे भिक्षु गये। कुशल क्षम पूछ उनके पास बैठ गये। उन्होंने जानना चाहा, आयुष्मान् अनुरुद्ध कौनसे धर्म के अभ्यास से बहुलिकृत महाभिज्ञताको प्राप्त किया जा सकता है ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "चार स्मृति प्रस्थानों के अभ्यास से बहुलिकृत महाभिज्ञता प्राप्त की जा सकती है।[८]

कण्डकी वन साकेत में अनुरुद्ध भगवान के दोनों प्रधान शिष्यों के साथ थे। वे दोनों उक्त समय उनके पास पहुँचे और पूछा, "सेखेय भिक्षु को किस धर्म का अभ्यास करना चाहिये ?" अनुरुद्ध ने चारों स्मृति प्रस्थानों के अभ्यास को बताया।[९] जितने दिन वे साकेत में रहे हर समय उनकी चर्चा का विषय चारो स्मृति प्रस्थान ही रहा।

श्रावस्ती लौटने पर उन्होंने स्मृति प्रस्थानों पर ही भिक्षुओं को उपदेश दिया। वे कहते है, "आयुष्मानों चार स्मृति प्रस्थानों का अभ्यास करना चाहिये। कौन से चार, कार्य कायानुपस्सना, वेदना वेदनानुपस्सना, चित्ते चित्तानुपस्सना और धर्मे धर्मानुपस्सना का अभ्यास करने से तृष्णा का क्षय होता है।"[१०]

वे एक समय सारिपुत्र के साथ अंब्रपालिवन वैशाली में रहते थे। वहाँ सारिपुत्र ने उनसे पूछा, "कि वे प्रसन्न तो है? उत्तर देते हुये उन्होंने कहा कि चार स्मृति प्रस्थान चित्त में सुप्रतिष्ठित होने के कारण वे सुखपूर्वक विहार करते है।"[११]

अंधवन में रहते वक्त वे एक बार बहुत ही बीमार हो गये थे। उन्हें देखने बहुत भिक्षु पहुचे। कुशल पूछ उन्होंने जानना चाहा, "आयुष्मान् किस प्रकार के विहार करने से आप अपने शारीरिक दुःख को भुलाये रहते हैं?"

"आयुष्मानों! चार स्मृति प्रस्थानों को चित्त में प्रतिष्ठित कर मैं अपने शारीरिक पीड़ा को भुलाये रहता हूँ।[१२]"

रोहिणी नामकी उनकी एक बहन थी। वह चर्मरोग से दुखी थी। इसी वजह से वह घरसे बाहर तक न निकलती। एक बार अनुरुद्ध अपने रिश्तेदारों को देखने गये। सब लोग उनसे मिलने आये पर रोहिणी बाहर नहीं निकली। उन्होंने उसे देखने का आग्रह किया तब वह आई। उन्होंने रोहिणी को उपदेश दिया कि वह अपने जेवर बेचकर भगवान और उनके संघ के लिये विश्राम गृह बनवाये। ऐसा करने पर रोहिणी की बिमारी दूर हो गई।

जान पड़ता है अनुरुद्ध सतिपट्ठान में विशेष अधिकार रखते थे। इस के अतिरिक्त अन्य विषय में वे अधिक प्रसिद्ध नहीं के समान ही है। वे एकांत जीवन प्रिय करने वालों में से थे। भिक्षुओं के आपसी झगड़ों में उन्होंने कभी दिलचस्पी नहीं ली।

उनकी ऋद्धि बल के कई उदाहरण पाये जाते है। वे उन भिक्षुओं में से थे जो देवताओं का अभिमान नष्ट करने के लिये ब्रम्ह लोक तक पहुँचे।[१३] ब्रम्हा को अभिमान था कि कोई भी तपस्वी उसके लोक में जाने का साहस नहीं कर सकता है।[१४] अनुरुद्ध ने उसकी इस मिथ्या धारणा को दूर किया।

अभिजिक प्राय: अनुरुद्ध के साथ ही रहा करता था। वह बहुत ही बातुनी था। एक बार उसे उपदेश देने को भगवान ने महाकाश्यप को भेजा। बाद में ज्ञात हुआ कि उसके साथ बात करना भी कठिन है क्यों कि अभिजिक और भण्ड भिक्षु भौतिक वस्तुओं में बहुत दिलचस्पी लेने वाले थे।

अभिजिक पर अनुरुद्ध के ऋद्धि का कोई प्रभाव नहीं पड़ा प्रतीत होता है।[१५] इसी प्रकार बहिये भी घोषिताराम में उनके साथ रहता था। कोशंबि के भिक्षुओं के कलह में उसने प्रधान रूप से हिस्सा लिया था, किन्तु अनुरुद्ध ने उसमें न रूचि दिखाई और न बहिये का विरोध ही किया। वे अपने काम से काम रखते थे।[१६] लगता है वज्जि भिक्षुओं में नंदिय और किंबिल के साथ अनुरुद्ध की अच्छी पटती थी।[१७]

उनके हृदय में रिश्तेदारों के प्रति बड़ा प्रेम था। इसी प्रकार अपने साथियों के प्रति वे इमानदार थे। वे हमेशा उनकी वकालत करने को तैयार रहते। भगवान के लिये तो उनमें अपार भक्ति थी। भिक्षुओं की सभा में वे भगवान के पास खड़े रहा करते थे। [१८]

कुशीनारा में भगवान का जब महापरिनिर्वाण हुआ तब अनुरुद्ध वहाँ उपस्थित थे। वे भगवान के निर्वाण का ठीक क्षण जानते थे। उन्होंने उस समय जो गाथाएँ कहीं वे साश्वत है और उनमें दार्शनिक दृष्टिकोण है। [१९]

भगवान की अंतेष्ठी के बारे में कुशिनारा के मल्लोंने उन्ही से विचार विमर्श किया था। [२०] बाद में प्रथम संगीति में उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान पाया था। कहा जाता है अंगुत्तरनिकाय के संबंध में सौंपी गई जबाबदारी को उन्होंने अंत तक निभाई और उसकी सुरक्षा की। [२१]

कहा जाता है कि वे पच्चीस वर्ष तक सोये ही नहीं और अपने जीवन में अंतिम तीस वर्ष वे केवल रात्रि के चौथे प्रहर भर ही सोया करते थे। [२२]

वे सो वर्ष से भी अधिक जिये होंगे क्यों कि उनके सहपाठियोंने लंबी उम्र पाई थी। उनका देहांत वज्जि गण राज्य में वेळुवग्राम में बाँस के वन में हुआ था। [२३]

---

१. अनुरुद्धमहावितक्क सुत्तं–अंगुत्तरनिकाय ।

२. वही

३. उपक्किलेस सुत्तं–मज्झिमनिकाय ।

४. नाळकपानं सुत्तं–मज्झिमनिकाय ।

५. अनुरुद्ध सुत्तं–अंगुत्तरनिकाय ।

६. अनुरुद्ध संयुत्तं–संयुत्तनिकायो ।

७. सुतन सुत्तं–अनुरुद्धसंयुत्तं–संयुत्तनिकायो ।

८. पठमकण्डकी सुत्त ,, ,,

९. तण्हक्खय सुत्तं ,, ,,

१०. अम्वपालिसुत्तं ,, ,,

११. बाळ्हगिलानसुत्तं ,, ,,

१२. दूसरे थे–महामोद्गल्यायन, महाकाश्यम और महाकप्पिन ।

१३. संयुत्तनिकाय ५. ३०२ ।

१४. संयुत्तनिकाय ३२. २०३–४ ।

१५. अंगुत्तरनिकाय २. २३९ ।

१६. चुळगोसिंगसुत्तं–मज्झिमनिकाय ।

१७. बुद्धवंस ५. ६० ।

१८. दीघनिकाय २. १५६–७ ।

१९. महापरिनिब्बाणसुत्तं–दीघनिकाय ।

२०. दीघनिकाय अट्ठकथा १. १५ ।

२१. थेरगाथा अट्ठकथा २. ७२ ।

२२. थेरगाथा ९१९ ।

★

उपस्थाक एवं स्त्री स्वातंत्र्य के प्रेरक

★

आनंद

(ई. पू. ५२७)

★

एक बार आयुष्मान् महाकाश्यप श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करते थे। आयुष्मान् आनंद उनके पास गये और बोले, "भन्ते ! भिक्षुणी आराम में चले।" महाकाश्यप ने टालने का प्रयत्न किया, "आयुष्मान आनंद तुम्हीं जाओ। तुम्हें ही बहुत काम रहता है।" जब आनंद ने तीसरी बार आग्रह किया तो वे साथ हो लिये।

वहां भिक्षुणियों के आग्रह पर महाकाश्यप ने उन्हें उपदेश दिया। सभी भिक्षुणियों ने प्रसन्नता प्रकट की पर भिक्षुणी थुल्लतिष्या से नहीं रहा गया। वह बहुत अप्रसन्न हुई और कहने लगी,

"कि पन अय्यो महाकस्सपो अय्यस्स आनन्दस्स वेदेहमुनिनो सम्मुखा धम्मं भासितब्बं मन्येति"

अर्थात् आर्य महाकाश्यप 'आर्य आनंद की उपस्थिति में धर्मोपदेश करने योग्य समझते है ?' वह आगे बोले, "यह तो ऐसे ही है जैसे कोई सुई बेचनेवाला सुई बनानेवाले को ही सुई बेचना चाहे। ठीक वैसा ही है विदेहमुनि के सामने महाकाश्यप का धर्मोपदेश देना।" [१]

यहाँ आनंद को विदेहमुनि कहा गया है। बौद्ध साहित्य में आनंद आनंद नाम से ही प्रसिद्ध है। विदेहमुनि के संबंध में महावस्तु का कहना है कि जब सिद्धार्थ कुमार ने अभिनिष्क्रमण किया तो आनंद भी उनके साथ साथ निकल जाना चाहते थे मगर उनकी माँ नहीं चाहती थी की क्यों कि उनका भाई देवदत्त भी पहले से ही घर छोड़ चुका था। इस लिये आनंद विदेह राष्ट्र चले गये और वहाँ मुनि बन गये। विदेह मुनि नाम की एक व्याख्या यही है।

अट्ठकथा [२] का कहना है, विदेहमुनि अर्थात् पण्डित मुनि "**पण्डितो हि ति सब्बकिच्च नि करोति, तस्मा वेदेहोति वुच्चति, वेदेहो च सोमुनि चाति वेदेहमुनि।**"

अजातशत्रु को भी वेदेहपुत्तो कहा गया है। बुद्धोघोष का कहना है कि 'विदेही' का मतलब है कि बुद्धिमती स्त्री न कि विदेह देश की। अजातशत्रु की माता कोशल राजा की, पुत्री थी, विदेह राजा की नहीं।

श्रावस्ती की 'विदेहिका' नाम की सेठानी के बारे में बुद्धकोषका कहना है, "वेदेहि पुत्तोति वेदेहीति पण्डिताति वचनं एतं पण्डिततित्थिया पुत्तोति अत्थे।"[३] अपदान अट्ठकथा का लेख है, विदेह रट्टे जाता, तस्सा देविया पुत्तो', अर्थात् आनंद विदेह कुमारी के पुत्र थे।

आनंद का पिता अमितोदन शुद्धोदय का छोटा भाई था। इस लिये यह संभव है कि आनंद भगवान से छोटे और महानाम से बड़े थे।[४] भगवान बुद्ध के अन्य कई प्रधान शिष्यों की तरह आनंद के बारे में भी बाल्यकाल की कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बुद्धत्व के दूसरे साल आनंद की प्रव्रज्या हुई। उनके साथ भद्दिय, भग्गु, किंबिल, अनुरुद्ध और देवदत्त तथा उपालि भी प्रव्रजित हुये थे।

बुद्धत्व के पच्चीस वर्ष बाद तक भगवान् बुद्ध के उपस्थाक समय समय पर बदलते रहे। भिक्षु उपस्थाकों में नगसमाल, नागित, उपवान और सुनक्खत्त थे। श्रामणेर उपस्थाकों में चुन्द, सागत, राध और मेघिय थे। जब भगवान पचपन वर्ष के हो गये तो उन्होंनें कहा कि अब मैं वृद्ध हो गया हूँ और चाहता हूँ कि कोई स्थाई उपस्थाक मेरे साथ रहें। उनका कहना था कि उनके कोई कोई उपस्थाक कुछ कहने पर कुछ समझ लेते हैं। एक समय उनके एक उपस्थाक ने उनका पात्र चीवर जमींन पर ही रख दिया था। ऐसी अवस्था में भगवान को स्वाभाविक तौर से स्थाई उपस्थाक की आवश्यकता अनुभव हुई।

सभी प्रधान शिष्यों ने अपने को भगवान की सेवा में प्रस्तुत किया किन्तु भगवान ने सभी का प्रतिक्षेप किया। केवल आनंद ही बचे थे और वे चुपचाप बैठे थे। जब उनसे पूछा गया कि वे अपने आप को सेवा के लिये क्यों प्रस्तुत नहीं करते तो उनका उत्तर था कि मांगने से कोई चीज मिली तो क्या मिली। भगवान को उचित लगेगा तो वे स्वयं आज्ञा देंगे।

जब भगवान ने आनंद को अपना उपस्थाक बन सकने की अनुमति दी तो आनंद ने स्वीकार किया किन्तु इससे पहले उन्होंने भगवान से कुछ शर्तें कबूल कराई। वे शर्तें थीं (१) भगवान अपने लिये मिला भोजन या वस्त्र उन्हे कभी नहीं देंगे।[५] (२) उन्हे अपनी गंधकुटी में सोने का अधिकार नहीं देंगे। (३) भगवान द्वारा स्वीकार किये गये निमंत्रण में उन्हे साथ ले चलने का आग्रह नहीं करेंगे। ऐसा न करने से, आनंद का सोचना था कि कुछ लोग कहेंगे कि आनंद खाने के लिये, चीवर के लिये अथवा निवास के लिये ही भगवान की

सेवा करता है। दूसरी शर्तें थी। (४) आनंद भगवान की ओर से कोई निमंत्रण स्वीकार कर लेगा तो उसे भगवान को स्वीकार करना पड़ेगा। (५) दूरसे आये हुये लोगों को वह बुद्ध दर्शन करा सकेगा, (६) वह जब चाहे तब बुद्ध के सामने अपनी कठिनाई उपस्थित कर सकेगा। (७) यदि भगवान ने आनंद की अनुपस्थिति में कोई उपदेश किसी को दिया होगा, तो वह उन्हें पुनः दोहराना होगा। आनंद का बयान था कि यदि उसे ये सुविधायें नहीं दी जायेंगी तो पूछनेवाले पूछेंगे कि आखिर भगवान की सेवा में रहने का क्या फल है? यदि उसे ये अनुकुलतायें प्राप्त होगी तभी लोग उसका विश्वास करेंगे और समझेंगे कि भगवान भी उसे महत्व देतें है। बुद्ध ने आनंद की सारी शर्तें स्वीकार की।

तब से पच्चीस[६] साल तक आनंद भगवान की सेवा करते रहे, छाया की तरह उनके पीछे पीछे रहे। भगवान को पानी लाकर देना, दतून देना, उनके पैर धुलाना आदि सारे काम आनंद स्वयं अपने हाथ से करते थे, जहाँ भी भगवान को जाना होता, वहाँ हर जगह उनके साथ जाते। भगवान की कुटी में झाड़ू लगाते। दिन के समय वे हमेशा भगवान के आस पास रहते ताकि वे भगवान की हर छोटी मोटी आवश्यकता पूरी कर सके। रात के समय एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में लैम्प लेकर नौ बार गंधकुटी के इर्द गिर्द घूमते जिससे वे स्वयं जागते रहे और भगवान को जब भी उनकी जरूरत पड़े वे पूरी कर सके और किसी बाहरी बाधा से भगवान की नींद में कोई विघ्न न उपस्थित हो।[७]

आनंद अपनी जिम्मेदारी के कार्य निभाने में बड़े ही कुशल थे। जब कभी भगवान भिक्षुओं को इकट्ठा करना चाहते थे, किसी को कोई संदेशा भिजवाना चाहते थे तो एक आनंद ही ऐसे थे जिन्हें यह काम सौंपा करते थे।[८]

आनंद भगवान से ऐसे सभी समाचार कह सुनाते जिन में भगवान बुद्ध को जरा भी दिलचस्पी हो, जैसे एक बार उन्होंने चुन्द समणुद्धेस से निगंठनाथ पुत्र के देहांत की बात सुनी थी।[९] यह घटना उन्होंने ही भगवान से कहीं थी।[१०] इसी प्रकार भगवान को कष्ट पहुचाने के लिये देवदत्त द्वारा रचे गये षडयंत्र की बात भी थी।[११]

भगवान के प्रति आनंद को कितनी श्रद्धा थी यह इस घटना से भी सिद्ध होता है कि देवदत्त के कहने से अजातशत्रु के हाथीवान ने नालगिरि हाथी को शराब पिला कर जिस रास्ते से भगवान आ रहे थे उसी रास्ते पर छोड़ा था ताकि वह भगवान को मार डाले। उस समय आनंद ही भगवान के सामने आये जिससे हाथी भगवान को कोई नुकसान न पहुंचा सके। ऐसा न करने के लिये भगवान ने उन्हे तीन बार मना किया था।[१२]

यदि श्रद्धावान उपासकगण या उपासिकायें तथागत को या भिक्षुओं को दान (भोजन) देना चाहती थी तो अकसर वे अपनी समस्याओं के संबंध में आनंद से ही परामर्श करती थी। आनंद भी हमेशा उनका मार्गदर्शन करते थे। इस संबंध में अंधकविन्द ब्राह्मण[१३] और रोज मल्ल का नाम लिया जा सकता है।

एक बार भगवान पारलेयवन में चले गये थे। कुछ भिक्षु भगवान से उपदेश सुनने की इच्छा से आनंद के पास गये। उनकी कामना पूरी करने का आनंद ने भरसक प्रयत्न किया। जब कभी आनंद को लगता कि भगवान से भेट हो सकना इस व्यक्ति विशेष के लिये लाभदायक हो सकता है तो वे बहुत अच्छी युक्ति खोज निकालते जिससे भगवान उससे बात करते और उसकी कठिनाइयों का निराकरन करते। उदाहरण के लिये उन्होंने निगंट्ठ सच्चक की भगवान से भेंट कराई।[१४] संगारव और रामक ब्राह्मण की भेंट कराई।[१५] इसी प्रकार भिक्षु समिद्धि को भी वे भगवान के पास ले गये, जो कि तथागत के दृष्टिकोण को गलत ढंगसे समझा रहा था।[१६] उनको लगा कि किंबल और दूसरे बहुत से भिक्षुओं का बड़ा कल्याण होगा यदि भगवान उन्हें आनापानसति का उपदेश दे देंगे। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की जिसे भगवान ने स्वीकारा।[१७] ऐसे भी अवसर आये है जब भगवान ने आनंद की बात स्वीकार नहीं की।

एक बार प्रतिमोक्ष का पारायण करने के लिये उन्होंने भगवान से तीन बार याचना की, मगर जबतक दोषी भिक्षु नहीं हटाये गये तबतक भगवान उपोसथ करने में सम्मिलित नहीं हुये।[१८]

आनंद इस की सावधानी रखते थे कि लोग भगवान को अकारण ही थका न दे। जब भगवान कुसिनारा के मल्लों के शालवन में महापरिनिर्वाण मंच पर थे तो सुभद्र परिव्राजक अपनी शंका मिटाने के लिये वहां गया था। उसने भगवान के दर्शन करने की इच्छा आनंद से प्रकट की। उस समय आनंद ने कहा, "अलं, आवुसो सुभद्द, मा तथागतं विहेठेसि। किलन्तो भगवा ति। बस आयुष्मान सुभद्र, भगवान को कष्ट मत दो। भगवान बहुत थके हुये हैं।' सुभद्र ने तीन बार याचना की। लेकिन आनंद ने तीनों बार ही इनकार किया। जब भगवान ने दोनों का वार्तालाप सुना तो आनंद को कहा कि सुभद्र को भेट कर लेने दो।[१९]

आनंद के कामों में एक यह भी काम था कि भगवान के उपदेश के बाद उपदेश शाला में जा कर किसी भी भूली भटकी चीज को उठा कर रखना। एक बार विशाखा का बहुमूल्य हार ही गलती से उपदेश शाला में छूट गया था। आनंद ने उसे उठा कर रखा और जब दूसरे दिन वे उसे लौटाने लगे तो

विशाखा ने यह कह कर लेना अस्वीकार कर दिया कि मैंने इसे संघ को अर्पण कर दिया। बाद में उसने उस हार के मूल्य का श्रावस्ती में पूर्वाराम बनवाया।

उनके साथी अकसर विविध समस्याओं के सुलझाने के बारे में उनसे सलाह लेते थे। एक बार बंगीश ने आनंद से यह भी पूछा था कि स्त्रियों के सामने उसको बड़ी असुविधा सी जान पड़ती है। उसे क्या करना चाहिये? धर्म के अनेक अंगो पर विचार विनिमय करने के लिये आनेवाले भिक्षुओं में कामभू [२०], उदायी [२१], छन्न [२२], और भद्द [२३] मुख्य थे। इसी प्रकार घोसित [२४] और उष्णम [२५], लिच्छवि अभय और पण्तिकुमारक [२६] तथा छन्न परिव्राजक [२७] कोकनुद [२८], मिगशाला उपासिका, कौशंबिका एक गृहस्थ [२९] और पेसेनदिकोसल[३०] ये सभी मार्गदर्शन के लिए आनंद के पास आने वाले में से थे। कभी कभी भिक्षु भगवान से संक्षिप्त उपदेश सुन, उसीको विस्तार से सुनने के लिए आनंद की खोज में निकलते, क्योंकि धर्म को सरल तरीके से समझाने में आनंद पटु थे।[३१]

कहा गया है कि कभी कभी भगवान जान बूझ कर ही संक्षिप्त उपदेश देते थे ताकि लोग उसे विस्तृत सुनने को आनंद के पास जायें। लोग आनंद से सुन कर फिर तथागत के पास लौटते और उन्हें आनंद की व्याख्या सुनाते, जिससे आनंद की विद्वता प्रकट करने का उनको अवसर मिलता। [३२]

एक बार किसी जमींदार ने भगवान से पूछा कि वह किस तरह धर्म का गौरव कर सकता है? भगवान बुद्ध का उत्तर था कि यदि उसे धर्म को गौरवान्वित करना है तो वह आनंद का गौरव करे। [३३] आनंद धर्मभाण्डागारिक जो थे।

एक बार कपिलवस्तु में बड़ी रात तक उपदेश देते रहने के बाद भगवान ने आनंद को उपदेश जारी रखने को कहा और स्वयं आराम करने लगे। आनंद ने वैसा ही किया। भगवान जागे तो आनंद का उपदेश अभी भी जारी था। भगवान ने आनंद की योग्यता की बड़ी प्रशंसा की। [३४] ऐसे अनेक अवसरों का उल्लेख मिलता है जब भगवान ने आनंद को उपदेश देने को कहा और उसके बाद श्रीमुख से उनकी तारीफ की।

आनंद कभी कभी भगवान से अपने उपदेशों में उस वक्त उपमा देने का प्रस्ताव भी करते। उदाहरण के लिये धम्मयान [३५] की उपमा। कभी कभी उपमा द्वारा दिये गय उपदेशों का नामकरण करने का सुझाव भी देते। जैसे–मधुपिण्ड्क सुत्त। [३६] कभी किसी खास सुत्त को याद रखने की इच्छा से उसका नामकरण करवाते। जैसे बहुधातुक सुत्त। [३७]

एक बार आयुष्मान आनंद अपने शिष्यों के साथ संदक परिव्राजक से मिलने गये और अपने उपदेश द्वारा उसको पराजित किया। उस समय वे अपने

पांच सौ शिष्यों के साथ कोशांबी के घोषिताराम में ठहरे थे । उन्होंने संदक को चार ध्यानों के बारे में उपदेश दिया था । उपदेश के अंत में अपने शिष्यों सहित संदक नें भगवान को अपना शास्ता मान लिया । [३८]

कभी कभी वे भगवान से उपदेश सुनते और बाद में वहीं उपदेश भिक्षुओं को सुनाते । [३९] उन्होंने आठ शर्तें भगवान से स्वीकृत करवाई थीं उनका वे पूरा पूरा लाभ उठाते थे । वे भगवान से कभी भी कोई भी प्रश्न पूछ सकते थे ।

उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी । वे भगवान बुद्ध की हर क्रिया कलाप पर बड़ी ही सावधानी से ध्यान देते थे । यदि शास्ता कभी अनायास मुसकराएँ भी, तो उन्हें आनंद को इसका कारण बताना पड़ता था । आनंद जानते थे कि भगवान की हर चेष्टा में कोई रहस्य छिपा रहता है ।

एकबार उपवाण भगवान को पंखा कर रहे थे । भगवान ने उन्हें वहाँ से हट जाने के लिये कहा । आनंद ने कारण जानने की इच्छा प्रकट की । भगवान ने बताया कि उपवाण के पंखा करने से तथागत के दर्शनार्थ आने वाले देवताओं के मार्ग में बाधा पहुँचती है । आनंद का समाधान करने के लिये तथागत हर समय तत्पर रहते थे ।

आनंद भगवान से प्राय: धर्म को ही लेकर चर्चा करते । खासतौर पर निरोध, लोक, शून्यता, वेदना, ऋद्धि, आनापान-स्मृति आदि विषयों को लेकर वे शील के उद्देश्य, समाधि की संभावना पर, संघ भेद पर, तथागत की प्रभावशाली वाणी पर, भिक्षुओं को प्रसन्न रखनेवाली स्थिति पर तथा इंद्रियोंके संयत रखने जैसे विधि उपयोगी विषयों पर चर्चा करते ।

जितने सूत्र आनंद को संबोधित करके कहे गये है, वे सबके सब उनके प्रश्नों के ही उत्तर नहीं है । कभी कभी दूसरे के मुह से सुना वार्तालाप भी वे भगवान को सुनाते थे तब तथागत उनका स्पष्टीकरण करते थे : कोशलनरेश प्रसेनजीत के साथ कल्याणमित्र का हुआ वार्तालाप आनंद ने तथागत के समक्ष दोहराया । तथागत ने आनंद को उसका महत्व समझाया । [४०]

आनंद अपने कोशांबी के परिव्राजकाराम में आने की बात भगवान से कहते हैं । वहाँ उन्होंने भिक्षुओं के बारे में जो कुछ सुना था कह सुनाते है । इसी प्रकार सारिपुत्र और परिव्राजकों के बीच हुये संवाद भी भगवान को सूचित करते है । [४१] जिस बात को स्वयं नहीं जानते, उसे बिना भगवान से पूछे नहीं बताते । जब तपुस्स ने उनसे पूछा कि गृहस्थ के लिये गृहस्थ जीवन क्यों आकर्षक नहीं है ? तो उसे सीधे तथागत के पास ले गये । उस समय भगवान उरुवेल काश्यप के महावन में मध्यान्ह-निद्रा ले रहे थे । [४२]

एक बार आनंद के मन में यह भावना पैदा हुई थी कि वे प्रतीत्य-समुत्पाद के नियम को इसकी पूरी गहराई में समझते हैं। वे भगवान से कहते है कि वे कितने खुश हैं जो इस प्रकार कठिण विषय को भी समझने में समर्थ हुय हैं। भगवान ने उन्हें सावधान किया और कहा कि वे इसके बारे में बहुत कम जानते हैं। भगवान ने आनंद को महानिदान सुत्तका उपदेश किया।

भिक्षुणी संघ की स्थापना कराने में आनंद का ही विशेष हाथ रहा। इसके लिये उन्होंने ही भगवान को प्रेरित किया था। प्रेरित ही नहीं किया था बल्कि मजबूर भी किया था। कपिलवस्तु में जब महाप्रजापति गौतमी ने स्त्रियों के लिये प्रव्रजित होने की अनुमति चाही, तो भगवान ने इसे अस्वींकार कर दिया। सैकड़ों शाक्य स्त्रियों को साथ लेकर उसने वैशाली तक भगवान का पीछा किया। रोती हुई, उदास, सूजे पैंरवाली स्त्रियों को आनंद ने कुटागार-शाला के बाहर खड़ी देखा। उनसे सारी कथा जान आनंद भगवान के पास गये और उनकी प्रार्थना स्वीकार करने की याचना की। आनंद ने तीन बार आग्रह किया : भगवान ने तीनों बार इनकार किया। तब आनंद को लगा कि क्यों न मैं दूसरी प्रकार से भगवात की अनुज्ञा प्राप्त करूं। उन्होंने भगवान से कहा,

"भन्ते ! क्या तथागत प्रवेदित, धर्म में, घर से बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोतापत्ति-फल, सकृतागामि-फल, अनागामि-फल तथा अर्हत्व को साक्षात् कर सकती हैं ?"

"साक्षात् कर सकती है, आनंद।"

"भन्ते ! यदि साक्षात् करने योग्य है तो, जो, अभिभाविका हैं, पोषिका है, क्षीरदायिका है, वह भगवान की मौसी महाप्रजापति गौतमी भगवान को बहुत उपकार करनेवाली है। जननी के मरने पर उन्होंनें भगवान को दूध पिलाया। भन्ते ! अच्छा हो यदि स्त्रियों को प्रव्रज्या की अनुज्ञा मिले।" आठ शर्तों पर भगवान ने अनुज्ञा दे दी। यदि आनंद बीच में न पडते तो शायद बौद्ध धर्म का इतिहास दूसरा ही होता।

संभवतः इसी कारण भिक्षुणियाँ आनंद को बहुत मानती थीं। आनंद को कोई कुछ कहे या उनका अपमान करे अथवा गाली दे तो भिक्षुणियाँ तुरंत आनंद का पक्ष लेती थी।

एक बार महाकाश्यप से आनंद का वार्तालाप चल रहा था। उस समय महाकाश्यप ने उनको गृहस्थी का चोर जैसा अपशब्द कहा और इस प्रकार बोलते हुये यह कह कर खत्म किया कि यह लड़का अपनी सीमा भी नहीं पहचानता। उस समय आनंद बहुत भिक्षुओं के साथ यात्रा कर रहे थे। अधिकांश तरुण मण्डली थी। जब आनंद महाकाश्यप को वापस राजगृह में मिलें तो

उन्होंने आनंद को उन तरुणों को उचित ट्रेनिंग न देने का दोषी ठहराया। महाकाश्यप द्वारा लडका कहा जाने से आनंद की बड़ी पीड़ा हुई। वे बोले, "भन्ते! पके बालों से मेरा सिर सफेद हो रहा है। मैंने आपको कभी कोई कष्ट नहीं दिया। न जाने आप मुझे लड़का क्यों कहते हैं?"

थुल्लनंदा ने इस घटना को सुना तो बड़ा क्षोभ प्रकट किया। वह कहती है, जो "महाकाश्यप किसी समय पाखण्डियों के गुरु थे, वे ऐसा कहने का साहस कैसे कर सकते है? वे ऋषि आनंद को लड़का कहकर कैसे डाँट सकते है?" थुल्लनंदा के इस व्यवहार के बारे में महाकाश्यप ने आनंद से शिकायत की। आनंद ने उसकी ओर से क्षमा चाही।

आनंद प्रायः भिक्षुणियों को उपदेश दिया करते। वे गृहणियों के भी चहेते उपदेशक थे। जब वे उपदेश देने लगते तो वे उनको घेर लेती, उनको पंखा करती और धर्म के संबंध में उनसे नाना प्रश्न पूछतीं। जब वे चुन्द को दण्डित करने कौशंबी गये तो उनका आगमन सुन राजा उदयन के अन्तःपुर की स्त्रियाँ उनके पास गई और उनका उपदेश सुना। वे इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने आनंद को पांच सौ चीवर दिये। इसी अवसर पर आनंद ने उदयन की शंका दूर की थी और उसे विश्वास दिलाया था कि जो चीज भी उन को दी जाती है, शाक्य पुत्र हर चीज का सम्यक उपयोग करते हैं। इस से राजा प्रसन्न हुआ था और उसने उन्हें दूसरे पांच सौ चीवर और दिये। आनंद ने सब के सब संघ में बाँट दिये।

ठीक इसी प्रकार की घटना कोशल नरेश प्रसेनजित के राज-महल में भी घटी बताई जाती है। राजा आनंद को दिये गये दान को लेकर पहले गुस्सा हुआ किन्तु बाद में उसने भी आनंद को एक हजार चीवर दिये। [४३]

एक बार प्रसेनजित ने भगवान से प्रार्थना की थी कि वे पांच सौ भिक्षुओं के साथ रोज राजमहल पधारा करें और रानी मल्लिका और वासभखतिया तथा राजमहल की अन्य स्त्रियों को उपदेश दिया करें। भगवान ने कहा कि उनके लिये रोज रोज एक ही स्थान पर उपदेश देने जाना असंभव है। तब उनसे किसी भिक्षु को ही भजने की प्रार्थना की गयी। यह नियम पूर्वक उपदेश देने का कार्य आनंद को ही सौंपा गया। रोज महल जाया करते ओर उपदेश दे आते। [४४]

एक दूसरे अवसर पर कोशल नरेश के अन्तपूर की स्त्रियों ने राजा से प्रार्थना की कि वे महल में उपदेश होने की व्यवस्था करें। राजा ने स्वीकार किया। राजमहल की स्त्रियों ने आपस में विचार किया कि भगवान के अस्सी प्रधान शिष्यो में सबसे योग्य कौन सिद्ध होगा। सर्व सम्मति से उन्होंने आनंद को ही चुना। [४५] आनंद ने अपने कर्तव्य का पालन किया।

सारिपुत्र मौद्गल्यायन, महाकाश्यप, अनुरुद्ध और कंखा रेवत आनंद के जिगरी दोस्त थे। [४६] इन सब में वे संघनवक थे, फिर भी वे सब उनका आदर करते थे। [४७] खासतौर पर सारिपुत्र के साथ उनकी मैत्री घनिष्ठ थी। भगवान की जिस तरह की सेवा सारिपुत्र स्वयं करना चाहते थे ठीक उसी प्रकार की सेवा आनंद ने भगवान को थी। इसी कारण सारिपुत्र आनंद से अधिक प्रेम करते थे और क्योंकि सारिपुत्र भगवान के प्रधान शिष्य थे इस लिये आनंद भी उनका विशेष आदर करते थे। जो भी तरुण किसी एक द्वारा प्रव्रजित किये जाते, वे दूसरे के पास शिक्षा पाने के लिये भेज दिये जाते। कोई भी चीज हो उनमें से किसी एक को मिलती वह दूसरे को अवश्य दी जाती। एक बार एक ब्राह्मण ने आनंद को बड़े कीमती चीवर दिये। वे तुरंत उन्हें सारिपुत्र को दे देना चाहते थे किन्तु सारिपुत्र उस समय कहीं अन्यत्र थे। उन्होंने भगवान बुद्ध की अनुज्ञा प्राप्त का कि सारिपुत्र के लौटने तक वे चीवर उनके लिये सुरक्षित रखे जाये। [४८] सारिपुत्र के परिनिर्वाण से उन्हें इतना अधिक आघात पहुंचा था कि बिल्ली के मुंह से छुटकारा पाने के लिये जैसे मुर्गा छटपटाता है, ठीक वैसे ही उनकी स्थिति हुई थी। [४९]

बीमारों के प्रति सहानुभूति दिखाने में या उनकी सेवा करने में भी आनंद किसी से पीछे नहीं थे। बीमारी की अवस्था में अनाथपिण्डिक [५०], सिरवट्ठ [५१] और मानदिन्न ने आनंद के लिये बुलावा भिजवाया था। इस बात का भी उल्लेख है कि एक बीमार भिक्षु की सेवा करने में उन्होंने भगवान की मदद की थी। [५२]

साधारण लोगों के प्रति और विशेष रूप से किसी कठिनाई में पड़े लोगों के प्रति भी उनके मन में कम सहानुभूति नहीं थी। एक सामान्य स्त्री का उदाहरण इसका साक्षी हैं। एक स्त्री विशाखा द्वारा बनवाये गये विहार के लिये आवश्यक सामान जुटाने में हाथ बटाना चाहती थी। इसलिये वह एक कीमती गलीचा ले आई थी किन्तु वह उसे बिछाने का स्थान नहीं पा रही थी। दूसरे बिछौने के मुकाबले वह बहुत हलका जान पड़ता था। आनंद ने उसके लिये उपयुक्त स्थान दिलवा दिया। [५३]

एक बार भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं की सभा में आनंद की विशषेतायें बताते हुये उन्हें पांच बातों में प्रमुख होने की उपाधि दी थी। भगवान का कहना था, " आनंद प्रत्युत्पन्न–मति है, अच्छे व्यवहारवाला है, धारणा शक्तिवाला है और अपने निश्चय पर दृढ़ रहनेवाला है। " [५४]

भगवान के प्रवचनों को ठीक जैसे का तैसा याद रखने की सामर्थ्य से युक्त होने का कारण आनंद धम्मभाण्डागारिक पदवी से विभूषित हुये। कहा जाता है कि उन्हें भगवान बुद्ध के द्वारा कही गई हर बात याद रहती थी। [५५]

सुत्तपिटक के प्रथम पांच निकायों में प्रत्येक सुत्त, एवं मे सुतं, ऐसा मैंने सुना से आरभ होता है। यह 'मैंने' आनंद के लिये आया है। उन्होंने अकेले भगवान बुद्ध से ही ८२ हजार धर्म पर्याय सीखे थे और २ हजार सीखे थे अपने साथी स्थविर भिक्षुओं से। [५६]

पालि ग्रंथों से पता चलता है कि आनंद जल्दी जल्दी बोलने में प्रसिद्ध थे। ग्रंथो की साक्षी है कि जितने समय में साधारण आदमी एक शब्द बोल सकता था उतने समय में आनंद अस्सी शब्द बोल जाते थे और उन के हर शब्द के उच्चारण करने के समय के भगवान सोलाह शब्दों का उच्चारण कर सकते थे। [५७]

भगवान को अंतिम दिनों में शारीरिक पीड़ा हुई। वे किसी न किसी तरह मनोबल पर ही शरीर यात्रा चला रहे थे। बाद में जब भगवान चापाल–चैत्य पर विराजमान थे, उन्होंने जैसे तैसे जीते रहने का संकल्प छोड़ दिया। जब भगवान ने कहा, "आज से तीन मास के बाद तथागत का परिनिर्वाण होगा" तो आनंद ने भगवान से निवेदन किया, "तिट्ठतु भन्ते, भगवा कप्पं.·····।" भगवान कल्प भर जियें· ··।" उस समय कल्प का मतलब मनुष्य के आयु प्रमाण से रहा होगा, सौ या अधिक से अधिक सवा सौ वर्ष मगर बाद में कल्प का अर्थ अनंत काल किया जाने लगा। भगवान का परिनिवृत्त होने का ही दृढ संकल्प (निश्चय) देख आनंद विचलित हुये। भगवान ने समझाया, "आनंद ! क्या मैंने पहले ही नहीं कहा कि सभी प्रिय, अच्छे लगने वालो का वियोग दु:खद होता है ?"

जो बात भी भगवान आनंद से कहते यदि उसको ठीक से समझ जाते तो फिर उसके बारे में भगवान से अधिक नहीं पूंछते। भगवान की अंतिम यात्रा में उन्होंने खास तौर पर इस नियम का पालन किया।

भगवान ने कहा, "आनंद ! संघ चाहे तो मेरे पश्चात छोटे मोटे नियमों में परिवर्तन कर सकता है।" [५८] आनंद जानते थे कि छोटे मोटे नियम कौनसे हैं ? इसलिये उन्होंने पूछने की जरूरत नहीं समझी। प्रथम संगीति के अवसर पर जब वह प्रश्न उठा तो महाकाश्यप ने किसी भी नियम में परिवर्तन करना अस्वीकार कर दिया और आनंद पर दोषारोपण किया कि उन्होंने भगवान से इस विषय में स्पष्टीकरण नहीं मांगा।

भगवान एक जगह पर आनंद से कहते हैं, "छन्नस्स आनंद, भिक्खुनो ममच्चयेन ब्रह्मदण्ड़ोति" "आनंद ! मेरे बाद छन्न भिक्षु को ब्रह्मदण्ड देना।" ब्रह्मदण्ड आनंद के लिये नया शब्द था। इसलिये इस के बारे में उन्होंने भगवान से पूछा और भगवान ने उन्हें समझाया। [५९]

इधर दो शाल वृक्षों के बीच भगवान परिनिर्वाण शय्या पर विराजमान थे और उधर आनंद विहार की खूंटी पकडे यह कह रो रहे थे, "अहंच वतम्हि सेखो सकरणीयो, सत्थु च मे परिनिब्बणं भविस्सति यो मम अनुकम्पको" हाय ! मैं अभी शैक्ष्य हूँ और मेरे अनुकम्पक शास्ता का परिनिर्वाण हो रहा हैं ।" [६०]

भगवान ने आनंद के बारे में पूंछा । जब उन्हें पता लगा तो उनको बुलवाया । उन्होंने आनंद से कहा, "अलं, आनंद मा सोचि, मा परिवेदि" आनंद ! बस कर, मत सोच, पश्चाताप मत कर । [६१] "खिप्पं होहिसि अनासवो ति", तुम जल्दी ही अर्हत्व को प्राप्त होंगे ।"

भगवान आगे भिक्षुओं को, आनंद की प्रशंसा करते हुये कहते हैं, "भिक्षुओं ! जो बुद्ध अतीत काल में हुये उन सब के उपस्थाक इतने ही उत्तम थे जैसा कि मेरा उपस्थाक आनंद । भिक्षुओं ! जो बुद्ध भविष्य में होंगे उनका भी उपस्थाक इसी प्रकार का उत्तम होगा जैसा मेरा आनंद ! भिक्षुओं ! आनंद पण्डित है, मेधावी है । वह यह जानता है कि किस समय भिक्षुओं को तथागत के दर्शन कराने चाहिये, इसी प्रकार वह जानता है कि किस समय "भिक्षुणियों" उपासक, उपासिकाओं को तथागत के दर्शन कराने चाहिये । आनंद जानता है कि यह काल राजाओं का, मंत्रिओं का, तैर्थिकों का तथा तीर्थंक श्रावकों का है ।"

भगवान आनंद के गुणों का बखान करते समय यहीं नहीं रुकते है । वे आगे कहते हैं "भिक्षुओं, आनंद में ये चार अद्‌भुत विशेषताएँ हैं (१) जो भिक्षु समूह आनंद के दर्शनार्थ जाता है वह उसके दर्शन से संतुष्ट होता है, उसके उपदेश से संतुष्ट होता है । वह उसका उपदेश कितना ही सुने उसकी इच्छा पूरी नहीं होती । (२) इसी प्रकार भिक्षुणी परिषद । (३) उपासक (४) और उपासिका परिषद ।"

राजगृह और श्रावस्ती जैसे बड़े नगरों में परिनिर्वाण प्राप्त होने को आनंद ने भगवान को प्रेरित करने का भरसक प्रयत्न किया । वे नहीं चाहते थे कि भगवान कुसिनारा जैसे छोटे से जंगली कस्बे में परिनिर्वाण को प्राप्त हो । आनंद का समाधान करने को भगवान ने कुसिनारा का इतिहास बता कर कहा कि एक समय यह कुसिनारा ही सम्राट महासुदर्शन की कुसावती नाम की राजधानी थी । [६२]

अपने निर्वाण के ठीक पहले भगवान नें आनंद को अपने निर्वाण का समाचार मल्लों तक पहुंचाने के लिये उनके पास भेजा । एक एक परिवार को, रिश्तेदारों के साथ एक एक समूह में आनंद वे भगवान के दर्शन कराये ताकि अधिक समय नहीं लगे । भगवान नें पहले से ही आनंद को बताया था कि

तथागत की अंत्येष्टि किस प्रकार की जाये, उसी प्रकार सब कुछ संपन्न हुआ। [६३]

भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण आनंद के लिये एक बहुत ही बड़ा आघात था।

आनंद को अर्हत न होने के बावजूद पाँच सो भिक्षुओं की प्रथम संगीति का संगीतिकारक चुना गया। भगवान के धर्म का पारायण करने के लिये स्वयं महाकाश्यप द्वारा वे चुने गये थे। संगीति में उनके लिये एक आसन खाली रखा गया था। रात भर वे अर्हत् पद प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहे। अंत में वे सफल हुये। [६४] उस संगीति में महाकाश्यप ने आनंद से धर्म के बारे में और उपालि से विनय के बारे में प्रश्न पूछे थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि अंत में संघ ने आनन्द के साथ न्याय नहीं किया। भगवान बुद्ध के जीवन काल में तो कोई उन्हें कुछ भी कहने का साहस नहीं करता था। महाकाश्यप भी नहीं। भिक्षुणी संघ की स्थापना को लेकर महाकाश्यप प्रसन्न नहीं थे। इसीलिये उन्होंने इस बात को लेकर आनंद को दोषी ठहराया था। संघ की उन्नति से महाकाश्यप को बड़ी ईर्ष्या थी। [६५] सम्भवत: इसीलिये एक बार आनंद के साथ तरुण भिक्षुओं की मण्डली देख उन्होंने आनंद को 'लड़का' कह कर गाली दी थी। अट्ठकथा [६६] के अनुसार यह घटना भगवान के परिनिर्वाण के बाद ही घटीत हुई थी।

आनंद पर जो दोषारोपण किये गये थे वे ऐसे नहीं थे जिन पर ध्यान दिया जाये। स्वयं आनंद भी उन्हें दोषी नहीं मानते थे। फिर भी संघ का गौरव रखने के लिये उन्होंने उन सब को कबूल कर लिया था। उन पर दोष लगाये गये थे, (१) उन्होंने बुद्ध से यह नहीं पूछा था कि छोटे मोटे नियम कौन कौन से है ? (२) उन्होंनें भगवान का स्नान करने का वस्त्र पैर में दबा कर निचोडा था। (३) स्त्रियों को ही प्रथम, बुद्ध के शरीर के दर्शन कराये। (४) भगवान के संकेतों के बावजूद कल्प भर बने रहने की उनसे याचना नहीं की। (५) भिक्षुणी संघ की स्थापना के लिये उन्होंने प्रयास किया। [६७]

इन बातों के बारे में आनंद को समाधान था कि इन बातों के करने या न करने में मैंने कोई दोष नहीं देखा। किन्तु अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिये उन्होंने उक्त बातों को 'अपराध' के रूप में स्वीकार कर लिया था। ऐसे उदार थे 'विदेह–मुनि' आनंद।

अपने जीवन का अंतिम काल उन्होंने साथियों को उपदेश देने में और उनको उत्साहित करने में ही बिताया। [६८] उन्होंने लम्बी आयु पाई थी। वे एक सौ बीस वर्ष जिये। [६९]

अंतिम दिनों में आनंद देहत्याग की कामना से ही मगध से वैशाली जा रहे थे। यह बात अजातशत्रु ने सुनी। परिचारक वर्ग के साथ उन्होंने रोहिणी नदी तक आनंद का पीछा किया। वैशाली के प्रमुखों ने भी सुना कि आनंद वैशाली आ रहे हैं। वे उनके स्वागत के लिये निकले। आनंद ने दोनों में से किसी भी एक पक्ष को अप्रसन्न नहीं करना चाहा। दोनों पक्ष रोहिणी नदी के दोनों किनारों पर उपस्थित थे। आनंद नदी के बीचों बीच थे। वहाँ वे तेजोकसिण ध्यान भावना में निमग्न हुये। उनके शरीर से आग की ज्वाला निकली और आनंद परिनिवृत्त हो गये।

मगध तथा वैशाली के लोगों ने आनंद के शरीरावशेष दो बराबर हिस्सों में बाँट लिये और अपने अपने राज्यों की सीमा में स्तूप बनवाये। [७०]

---

१. कस्सपसुत्तं–संयुत्तनिकाय।

५. सारत्थप्पकासिनी–संयुत्तनिकाय अट्ठकथा।

३. वही।

४. भगवान बुद्ध पृ. ९१ धर्मानंद कोसंबि।

५. फिर भी भगवान ने एक बार पुक्कुस मल्ल द्वारा दिये दो चीवरों में से एक चीवर आनंद को दिया, 'दीघनिकाय' बुद्ध घोष की व्याख्या है कि आनंद का सेवा काल अब समाप्त हो रहा और वह इस अपवाद से मुक्त होना चाहते थे कि उन्होंने २५ साल तक भगवान की सेवा की और तब भी भगवान ने उन्हें कुछ नहीं दिया। आगे कहा गया है कि बाद में आनंद ने वह चीवर भी भगवान को ही अर्पण कर दिया, दीघनिकाय।

६. थेरगाथा।

७. मनोरथपूरणी और थेरगाथा अट्ठकथा।

८. दीघनिकाय और विनयपिटक।

९. दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय।

१०. विनयपिटक।

११. चूल्लवग्ग–विनयपिटक।

१२. विनयपिटक।

१३. मज्झिमनिकाय।

१४. संयुत्तनिकाय, मज्झिमनिकाय।

१५. मज्झिमनिकाय।

१६. संयुत्तनिकाय ।

१७. विनयपिटक ।

१८. महापरिनिब्बाणसुत्तं–दीघनिकाय ।

१९. संयुत्तनिकाय ।

२०. वही ।

२१. वही ।

२२. वही और थेरगाथा ।

२३. संयुत्तनिकाय ।

२४. अंगुत्तरनिकाय ।

२५. वही ।

२६. मज्झिमनिकाय ।

२७. अंगुत्तरनिकाय ।

२८. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा ।

२९. जातक–हिन्दी अनुवाद–भदंत आनंद कौसल्यायन ।

३०. सेखसुत्त–मज्झिमनिकाय ।

३१. संयुत्तनिकाय ।

३२. मज्झिमनिकाय ।

३३. वही ।

३४. खद्देकसुत्त–मज्झिमनिकाय ।

३५. दीघनिकाय ।

३६. संयुत्तनिकाय ।

३७. वही ।

३८. अंगुत्तरनिकाय ।

३९. जातक–भदंत आनंद कौसल्यायन ।

४०. धम्मपद अट्ठकथा ।

४१. महासार जातक– भदंत आनंद कौसल्यायन ।

४२. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा ।

४३. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा ।

४४. विनयपिटक ।

४५. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा ।

४६. मज्झिमनिकाय ।

४७. संयुत्तनिकाय ।

४८. विनयपिटक ।

४९. धम्मपद अट्ठकथा ।

५०. अंगुत्तरनिकाय ।

५१. थेरगाथा अट्ठकथा ।

५२. थेरगाथा ।

५३. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा ।

५४. महापरिनिब्बाणसुत्त–दीघनिकाय ।

५५. वही ।

५६. वही ।

५७. वही ।

५८. वही ।

५९. वही ।

६०. संयुत्तनिकाय, थेरगाथा ।

६१. संयुत्तनिकाय ।

६२. संयुत्तनिकाय अट्ठकथा ।

६३. विनयपिटक ।

६४. मज्झिमनिकाय, थेरगाथा । दीघनिकाय ।

६५. धम्मपद अट्ठकथा ।

६६. वही ।

★

प्रव्रज्या के लिये सप्ताह का सत्याग्रह

★

राष्ट्रपाल

(ई. पू. ५०६)

★

उन्होंने माता पिता से प्रव्रज्या की अनुज्ञा चाही। अनुमति प्राप्त न होने से वे निराश नहीं हुये। वे तवे के समान तपती बालूदार भूमि पर बैठ गये और संकल्प किया, "यहां मेरा मरण होगा या प्रव्रज्या।" ये उद्गार कुरुदेशीय श्रेष्ठी पुत्र राष्ट्रपाल के थे।

राष्ट्रपाल का जन्म कुरु प्रदेश के थुल्लकोट्ठित ग्राम में श्रेष्ठि के घर हुआ था। उनका परिवार गांव में प्रधान माना जाता था। उन्हें राष्ट्रपाल नाम दिया गया था। वे बड़े ही आमोद प्रमोद का जीवन व्यतित करते थे। उनके माता पिता ने उनका विवाह कर दिया था।

उस समय भगवान बुद्ध कुरु में चारिका के लिये निकले थे। महाभिक्षु संघ के साथ वे थुल्लकोट्ठित ग्राम पधारे। गांव के ब्राह्मण गृहपतियों ने भगवान का आगमन सुना। उन्होंने भगवान के संबंध में सुन रखा था कि वे अर्हत हैं, सम्मेक बुद्ध हैं, पुरुषों का दमन करने वाले सारथी हैं, विद्या और आचरण से संपन्न हैं और देव–मनुष्यों के शास्ता हैं। अपने भाग्य की सराहना कर वे सब भगवान के दर्शनार्थ गये। उन में से कुछ भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। कुछ कुशल क्षेम पूछ एक ओर बैठ गये। कुछ अपना नाम गोत्र बता कर एक ओर बैठ गये। कुछ जा कर चुपचाप बैठ गये। उन सब को भगवान ने उपदेश दे संतुष्ट किया।

राष्ट्रपाल ने सोचा, "घर में रह कर भगवान के धर्म के अनुसार परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करना दुष्कर है, क्यों न मैं दाढ़ी मूछ मुण्डवा काषाय वस्त्र धारण कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जावूं।"[१]

भगवान का उपदेस सुन सब ग्रामवासी अपने अपने घर चले गये। उन सब के चले जानें पर श्रेष्ठी पुत्र राष्ट्रपाल भगवान के पास पहुंचे। उन्हें अभिवादन कर के एक ओर बैठ गये। उन्होंने भगवान से प्रार्थना की, "भन्ते! जैसे जैसे मैं भगवान के उपदेश किये धर्म को समझता हूं, यह घर में रह कर

ब्रह्मचर्य का पालन करना अति कठिन है । भन्ते प्रब्रजित होने की मेरी कामना है । भन्ते भगवान के पास मुझे प्रब्रज्या मिले, उपसंपदा मिले । भगवान मुझे प्रब्रजित करें । "

भगवान नें उत्तर दिया, "प्रब्रजित होने के लिये तुम्हें माता पिता की अनुज्ञा प्राप्त है ?"

"नहीं भन्ते ।"

"तो राष्ट्रपाल माता पिता की अनुज्ञा अप्राप्त व्यक्ति को तथागत प्रब्रजित नहीं करते हैं ।"

"भन्ते वहीं कार्य करूंगा जिससे मेरे माता पिता अनुज्ञा दे दे ।"

राष्ट्रपाल भगवान को अभिवादन करके घर के लिये बिदा हुये । घर जा उन्होंने माता पिता को कहा, ' अम्म ! तात ! ! मुझे घर से बेघर हो प्रब्रजित होनें की अनुज्ञा दें ।"

उनके माता पिता ने कहा, "तात राष्ट्रपाल ! तू हमारा एकलौता पुत्र है, तू हमारा प्रिय पुत्र है । सुख में पला, सुख भोगता तू किसी प्रकार का दुःख नहीं जानता है । मरने पर भी हम तुझसे बेचाह न होंगे तो फिर कैसे हम तुझे जीते जी प्रब्रजित होने की आज्ञा देंगे तात ! तुझे प्रब्रज्या की अनुमति नहीं दे सकते ।"

राष्ट्रपाल ने तीन बार प्रार्थना की और माता पिता ने तीनों बार इनकार किया ।

तब राष्ट्रपाल कुल पुत्र माता पिता के पास प्रब्रज्या की परवानगी न पा कर, वही तपी नंगी धरती पर बैठ गये, "यही मेरा मरण होगा या प्रब्रज्या ।"

वे वैसे ही पड़े रहे । ' उन्होंने एक दिन खाना नहीं खाया । दूसरे दिन भी नहीं खाया । इस प्रकार वे सात दिन तक निराहार वैसे ही बैठे रहे ।

उनके माता पिता को बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने पुत्रको बहुत समझाया, "तात उठ । खाना खा । पी, सुख भोग । तुने किसी तरह का दुःख नहीं भोगा है । घर में रह कर पुण्य कर ।" पर राष्ट्रपाल मूर्तिवत् मौन रहे ।

उनके माता पिता उनके सहायक मित्रों के पास गये और निवेदन किया, "आओ तात ! राष्ट्रपाल को समझाओ कि वह माता-पिता का प्रिय एकलौता बेटा है । प्रब्रजित न हो । वह तुम्हारी बात मानेगा ।"

उनके अनुरोध पर राष्ट्रपाल के मित्र उनके पास गये । उन्होंने बहुत

समझाया। परंतु राष्ट्रपाल ने किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया। वे शान्त मौन धारण किये पड़े रहें। उन पर किसी का कोई असर नहीं हुआ। यह देख उनके मित्रों ने उनके माता पिता से कहा,

"अम्म, तात! राष्ट्रपाल कई दिनों से नंगी तपी भूमि पर पड़ा है। यही उसका मरण होगा या प्रव्रज्या। यदि तुम उसे अनुज्ञा न दोंगे तो वह यही मर जायेगा, यदि अनुज्ञा दोगे तो प्रव्रजित होने पर भी तुम उसे देख सकोंगे। उसका मन प्रप्रज्या में नहीं लगा तो और कहाँ जायेंगा। यही चला आयेगा। इसलिये उसे प्रव्रज्या की अनुमति दे दो।"

"तात! हम राष्ट्रपाल को प्रव्रज्या की अनुज्ञा देते हैं। प्रव्रजित होने पर हमें दर्शन देंना होगा।" पराजित माता पिता ने अंत में पुत्रको अनुमति दे ही दी।

मित्रों से माता पिता की अनुज्ञा की सूचना सुन कर राष्ट्रपाल बल पूर्वक उठें। वे भगवान के पास गये और उन्हें अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। वे बोले,

"भन्ते! मैं माता पिता की अनुज्ञा प्राप्त हूँ। भगवान मुझे प्रव्रजित करें।"

राष्ट्रपाल ने भगवान के पास प्रव्रज्या एवं उप्रसंपदा प्राप्त की। दो सप्ताह पश्चात भगवान वहाँ से श्रावस्ती के लिये रवाना हुये। राष्ट्रपाल भी भगवान के साथ गये। वहाँ भगवान अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करने लगे। वहाँ रहते समय राष्ट्रपाल ने संयमी हो विहरते अल्पकाल में ही अपने उद्देश्य की प्राप्ति की। वे अर्हतों में से एक हुये।

प्रव्रज्या की अनुमति प्राप्त करते समय माता पिता को दिया गया वचन उन्हें स्मरण हो आया। माता पिता को दर्शन देने उन्हें गांव जाना था। इसी उद्देश्य से वे भगवान के पास गये। वन्दना कर वे एक ओर बैठे। वे भगवान की अनुमति चाहते थे।

"भन्ते! यदि भगवान अनुज्ञा दें; तो मैं माता पिता को दर्शन देना चाहता हूँ।"

भगवान ने अपने मन से राष्ट्रपाल के मन को जाना। उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि अब राष्ट्रपाल भिक्षु शिक्षा को छोड़ गृहस्थ नहीं बन सकता। तब भगवान ने आयुष्मान राष्ट्रपाल को कहा, "राष्ट्रपाल जैसा योग्य समझो।"

भगवान से अनुज्ञाप्राप्त राष्ट्रपाल आसन से उठे। उन्होंने भगवान को प्रणाम करके प्रदक्षिणा कर पात्र चीवर ले थुल्लकोट्टित ग्राम के लिये रवाना

हुये। आज की तरह आवागमन की सुविधा न होने के कारण वे चारिका करते क्रमशः थुल्लकोट्ठित जा पहुँचे। वे वहाँ राजा कौरव्य के मिगचीर नामक उद्यान में विहार करने लगे।

वे भिक्षु नियम के अनुसार पुर्वान्ह समय चीवर पहन पात्र ले भिक्षाटन के लिये गांव में प्रविष्ट हुये। कहीं अन्यत्र बिना प्रतीक्षा किये ही वे अपने पिता के घर पहुंचे। उस वक्त उन के पिता बिचली द्वारशाला में बाल बनवा रहे थे। काषाय वस्त्र धारी को दूर से ही आते देख गृहपति ने गाली देना शुरू किया,

" इन मुण्डको, श्रमणों ने मेरे एकलौते प्रिय पुत्र को प्रव्रजित कर लिया। "

राष्ट्रपाल ने पितृ-गृहसे न दान पाया न प्रत्याख्यान ही, एक फटकार मात्र पाई। उसी समय एक दासी बासी दाल फेकने के लिये बाहर आई। उसे देख उन्होंने कहा,

" भगिनी ! दाल फेकना चाहती है तो यहां मेरे पात्र में डाल दे। "

उनके पात्र में दाल डालते हुये उसने उनका रूप रंग और स्वर पहचाना। दौड़ी दौड़ी उनकी माता के पास गई और बोली, " आर्या, जानती हैं, आर्य पुत्र राष्ट्रपाल आये है ? "

" यदि सच बोलती है तो तू आज से दासत्व से मुक्त होगी " माता ने कहा।

वह गृहपति के पास गई और पुत्र के आगमन की सूचना दी। धोती संभालता हुआ गृहपति जहां राष्ट्रपाल बासी दाल खा रहे थे वहां गया। उसने पुत्र से प्रार्थना की,

" तात राष्ट्रपाल बासी दाल खा रहे हो। पुत्र घर चलो। "

" गृहपति ! घर छोड़ बेघर हुये हम प्रव्रजितों को घर कहां है ? गृहपति तुम्हारे घर गया था। वहाँ न दान पाया और न प्रत्यख्यान। किन्तु पाई फटकार मात्र। "

" आओ तात राष्ट्रपाल घर चले। "

" बस गृहपति। आज मैं भोजन कर चुका हूँ। "

" तो तात राष्ट्रपाल कल के लिये भोजन स्वीकार करो। "

राष्ट्रपाल ने पिता का निमंत्रण मौन भाव से स्वीकार किया।

घर पहुंच गृहपति ने राष्ट्रपाल की पूर्व पत्नियों से निवेदन किया

"बहुओ जिन अलंकारों से अलंकृत हो तुम पहले राट्रपाल को प्रिय लगती थी उन अलंकारों से अलंकृत हो उसे घर लौटाने का प्रयत्न करो।"

दूसरे दिन उनके पिता ने हिरण्य अशर्फियां और सुवर्ण की बड़ी राशी करवा उन्हें चटाई से ढ़ंकवां नाना प्रकार के खाद्य भोज्य तैयार करवाया। वे आयुष्मान राष्ट्रपाल के पास गये और भोजन की सूचना दी। राष्ट्रपाल चीवर पहन पात्र ले पिता के पीछे पीछे घर पहुंचे।

हिरण्य सुवर्ण राशी खोल कर उनके पिता बोले, "तात! यह तेरी माता का मातृक धन है। पिता और पितामह का अलग है। पुत्र भोग भी भोग सकते हो। भिक्षु जीवन को त्याग गृहस्थ बन भोग भोगो और पुण्य करो।"

गृहपति मेरा कहना मानो तो इस हिरण्य और सुवर्ण राशी को गाडियों में रखवा, गंगा नदी में बहा दो।"

उनके पिता का दूसरा शस्त्र था राष्ट्रपाल की पूर्व पत्नियां। ससुर का संकेत पाकर एक एक राष्ट्रपाल के पास गई और उनके पैरों में पड़ गिड़गिड़ाई, "आर्य पुत्र जिनके लिये आप ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं क्या वे अप्सरायें हमसे भी अधिक सुन्दर है?"

"बहनों! हम अप्सराओं के लिये ब्रह्मचर्य नहीं पालन कर रहे हैं।" पति से बहन का संबोधन सुन वे वही बेहोश हो गई। तंग आकर उन्होंने अपने पिता से निवेदन किया,

"गृहपति भोजन देना है दो। बेकार हैरान न करो।"

"तात भोजन करो। तैयार है।" कह पिता ने उन्हें यथेच्छ भोजन कराया।

भोजन समाप्त कर राष्ट्रपाल ने जीवन की असारता और अनित्य धर्म का उपदेश दिया। वे वहाँ से कुरु नरेश के उद्यान चले गये और एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गये।

राजा ने माली को आज्ञा दे रखी थी कि बाग देखने आने से पहले वह उसकी साफ सफाई करे। माली उद्यान में अपना काम कर रहा था। उसने राष्ट्रपाल को वृक्ष के नीचे बैठे देखा। वह राजा के पास गया और उद्यान देखने लायक होने की सूचना दी तथा कहा कि एक वृक्ष के नीचे राष्ट्रपाल विराजमान हैं। राजा ने राष्ट्रपाल के बारे में सुन रखा था।

"आज उद्यान विहार रहने दो। आज मैं उन श्रमण के दर्शन करूंगा।" राजा ने तैयारी की आज्ञा दी। वह अपने अनुयाइयों को साथ ले राष्ट्रपाल के

दर्शनार्थ गया। कुशल क्षेम की बातचीत हो चुकने पर स्वयं अभी भी खड़े राजा ने राष्ट्रपाल को फूलों की ढेरी पर बैठने का निमंत्रण दिया।

"नहीं राजन् आप ही वहाँ बैठे। मैं अपने स्थान पर ठीक हूँ" संकेत किये स्थान पर बैठ राजा ने कहा,

"राष्ट्रपाल चार हानियां हैं जिन के कारण आदमी दाढी मूछ मुण्डवा, काषाय वस्त्र धारण कर घर से बेघर हो जाते हैं। कौन से चार (१) बुढापा (२) गिरता हुआ स्वास्थ्य (३) दारिद्रता और (४) निकट संबंधिओं का मरण। लेकिन आप तो अभी चढती जवानी में हैं, काले काले केश हैं जिन्हें सफेदी छू भी नहीं गई है, सुंदर तारुण्य है, आपको तो वार्धक्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानी का खतरा नहीं है। आप क्यों घर से बेघर हो गये है ?"

"आप न तो बीमार है और न आपको कष्ट ही है, आपका स्वास्थ्य अच्छा है। आपको गिरते हुये स्वास्थ्य से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं है। आप क्यों घर से बेघर हुये ?"

"आप न तो दरिद्र हैं और न संपत्ति शून्य। आप को तो दरिद्रता से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं है तो, आप क्यों घर से बेघर हुये ?"

"आपके तो मित्रों और सगे संबंधियों की कमी नहीं है। आपको तो सगे संबंधिओं के मरण से उत्पन्न होने वाली किसी हानि से कोई खतरा नहीं है। आप क्यों घरसे बेघर हुये हैं ?"

आयुष्मान राष्ट्रपाल ने राजा के सभी प्रश्नों के उत्तर दिये।

"राजन ! मैं घर से बेघर इस लिये हो गया कि मैंने चार बाते जानी देखी और जानने वाले तथा देखने वाले सम्मेक सम्बुद्ध से सुनी।

"संसार अनित्य है, निरंतर परिवर्तन शील है।"

"संसार का कोई मालिक एवं संरक्षक नहीं है।"

"हमारा कुछ भी नहीं। हमें सब कुछ पीछे छोड़ जाना है।"

"तृष्णा के वशीभूत होने से संसार दुःखी है।"

यह सुन कर राजा कह उठा, "यह अद्भुत है ! यह अद्भुत है ! इस विषय में तथागत का कथन कितना सत्य है ?" [२]

थुल्लकोट्ठित ग्राम में कुछ दिन विहार कर आयुष्मान राष्ट्रपाल भगवान

के पास श्रावस्ती चले गये। एक बार भगवान ने भिक्षु परिषद में राष्ट्रपाल की प्रशंसा में कहा कि जो लोग श्रद्धा से प्रव्रजित हुये उनमें राष्ट्रपाल अग्र है।

---

१. रट्ठपापलसुत्त–मज्झिमनिकाय।

२. रट्ठपालसुत–संयुत्तनिकाय: मज्झिमनिकाय अट्ठकथा: थेरगाथा अट्ठकथा: रट्ठपालअपदान–अपदान।

★

हत्यारे से साधु पुरुष

★

अंगुलिमाल

(ई. पू. ५०४)

★

विशाल सेना के बावजूद जो कार्य राजा प्रसेनजित कोशल न कर सका वही कार्य भगवान बुद्ध के एक वाक्य से संभव हो सका। इसी कारण तथागत ने कहा भी है, "नहि वेरेन वेरानि संम्मतीध कुदाचनं–" बैरसे बैर कभी शांत नहीं होता।"

कोशल नरेश के राज्य में जालिनी नाम के जंगल में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता था। उसके हाथ सदा रक्त से रंगे रहते। उसका काम था राहगिरों को मारना, काटना। वह आदमियों से बेहद घृणा करता था। जंगल के पशु पक्षी ही उसके साथी थे। वह उनसे प्रेम करता था। उसके भय के कारण आसपास के गाँव उजड़ गये, नगर वीरान हुये।[१] जब जिस किसी की हत्या करता उसकी एक अंगुली काटकर अपनी माला में पिरो लेता था जिसे वह गले में ड़ाले रहता। इसी कारण उसका नाम अंगुलिमाल पड़ा।

अंगुलिमाल भग्गव ब्राह्मण का पुत्र था। उसकी माता मन्तानी थी। भग्गव ब्राह्मण राजा प्रसेनजित के दरबार में पुरोहित था।

कहा जाता है कि अंगुलिमाल का जन्म चोर नक्षत्र पर हुआ था। जिस रात उसका जन्म हुआ उस रात राज महल और नगर के सारे शस्त्र चमक उठे। इस घटना से किसी को कोई हानि नहीं पहुंची। इसी वजह से बालक का नाम अहिंसक रखा गया।[२]

कुछ बड़ा होने पर उसके पिता ने विद्याभ्यास के लिये उसे तक्षशिला भेजा। उस काल में आचार्य के पास दो प्रकार के शिष्य होते थे। एक शुल्क देकर पढ़ने वाले और दूसरे धर्मअंतेवासी, निःशुल्क छात्र। अहिंसक दूसरे प्रकार का छात्र था। वह व्रत संपन्न था। आज्ञाकारी था। सदाचारी और सत्यवादी एवं प्रिय, मधुर भाषी था।

अहिंसक के आगमन के दिन से ही दूसरे शिष्य उससे ईर्ष्या करने लगे। वे सब बैठे बैठे उसके खिलाप षडयंत्र करते। इस प्रकार बरसो बीत जाने पर

उन्होंने सोचा, "यह अधिक प्रज्ञावान होने से हम इसे दुष्प्रज्ञ नहीं कह सकते, व्रत युक्त होने से दुर्व्रत नहीं कहा जा सकता, सुजात होने के कारण कुजात नहीं कहा जा जकता। क्या किया जाये ? उन में से एक ने सलाह दी, आचार्यणी को बीचमें डालकर इसे नष्ट करें।"

किसी निरपराधि को नष्ट करने के लिये मनुष्य सभ्यता में इस से उपयुक्त शस्त्र शायद ही हो। मनुष्य कितना ही विद्वान क्यों न हो, कितना ही वीर क्यों न हो परंतु स्त्री के संबंध में सोचने पर उसके सारे गुण सारी विशेषतायें दो कौड़ी की हो जाती है। स्त्री पुरुष की कमजोरी है और पुरुष स्त्री की कमजोरी।

अहिंसक के विरुद्ध शिष्यों ने तीन टोलियां बनाई। प्रथम टोली आचार्य के पास गई। सभी ने आचार्य को अभिवादन किया और एक ओर खड़े हो गये।

आचार्य ने पूछा, "तातो ! क्या है ?"

"इस घर में एक कथा सुनाई देती है, आचार्य," शिष्योंने कहा।

"तातो कैसी कथा ?"

"हम समझते हैं अहिंसक माणवक आप के घर के भीतर को दूषित कर रहा है।"

"जाओ नीचो, मेरे पुत्र और मुझमें विना कारण कलह मत पैदा करो।" आचार्य ने अहिंसक की शिकायत करने वालों को फटकारा।

इस के बाद दूसरी और तीसरी टोली ने आकर वही बात कही। उन्होने अंत में कहा, "यदि हमारा विश्वास न हो तो परीक्षा करके देखिये।"

पत्नी और अहिंसक के प्रति आचार्य को संदेह होने लगा। स्त्री के प्रति संदेह ही आदमी की सबसे बड़ी कमजोरी या बीमारी है। यह संदेह दोनों ओर को जला कर खाक कर देता है।

आचार्य के मन में संकल्प विकल्प आने लगे, "मालूम होता है दोनों में अनैतिक संबंध है। क्या अहिंसक को मार डालूं ? यदि मार डालूंगा तो दिशा-प्रमुख आचार्य अपने पास आये शिष्यों को दोष लगा कर जान से मारता है, जान कर कोई भी विद्यार्थी मेरे पास शिल्प सीखने नहीं आयेगा। इस प्रकार मेरा यश और लाभ नष्ट हो जायेगा। तब उससे विद्या समाप्ति की दक्षिणा मांगूंगा, एक सहस्र आदमियों को मारने की। फिर यह किसी न किसी के हाथ से मारा ही जायेगा।" आचार्य ने निश्चय कर अहिंसक को पास बुलाया,

"आओ तात एक सहस्र को मारो। इस प्रकार तुम्हारी विद्या समाप्ति की दक्षिणा पूरी होगी।"

"आचार्य हम अहिंसक कुल में उत्पन्न हुये हैं। यह नहीं कर सकते।" अहिंसक ने प्रतिवाद किया।

"तात दक्षिणा दिये बिना विद्या फलदायी नहीं होती।"

विद्या-फल का हर छात्र अभिलाषी होता है। अहिंसक को भी विद्या-फल की जरूरत थी। मजबूरी से उसको आचार्य की आज्ञा का पालन करना पड़ा।

उसने आचार्य को प्रणाम किया और शस्त्र ले कोशल राज्य के अंतर्गत जालिनी नामक बन में घुसा। वह राहगिरों को मारने लगा। वह किसी का कुछ सामान नहीं लेता केवल मारे गये लोगों की गिनती याद रखता। एक हजार जो उसे मारने थे। क्रमशः वह मरे हुये लोगों की गिनती भूलता गया, उन्हें याद नहीं रख सका। तब मारे गये एक एक आदमी की अंगुली काट कर रखता गया पर वे रखे स्थान से खो जाती, वह उन्हें खोज नहीं पाता। तब अंत में उसने आदमियों को मार, अंगुली काट उनमें छेद कर माला की तरह गले में लटकाने लगा। इसी से उसका नाम अंगुलिमाल हुआ।

उसके डरसे जंगल में कोई नहीं जाता। वह रात्रि के समय गांव में जाकर दरवाजे तोड आदमियों को मार उनकी अंगुलियाँ काट लाता। इस कारण तीन तीन योजन के लोग घर गांव छोड श्रावस्ती के चारों ओर डेरे लगा रहने लगे। जनता ने राजा से शिकायत की, "देव! राज्य में चोर अंगुलिमाल उत्पन्न हुआ है।"

अंगुलिमाल को पकडने में राजा ने कोई कसर नहीं रहने दी परंतु सारे प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुये। राजा अंगुलिमाल से जनता की रक्षा नहीं कर सका।

उस समय भगवान बुद्ध अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम श्रावस्ती में विहार करते थे। वे डाकू अंगुलिमाल के अत्याचारों की कहानी से परिचित थे। भगवान ने उस डाकू को एक आदमी, एक संत पुरुष बनाने का निश्चय किया। इसी लिये एक दिन भोजनानंतर पात्र चीवर धारण कर जिधर अंगुलिमाल के होने की बात सुनी थी उधर ही निकल पडे। भगवान को उधर जाते देख ग्वाले, गडरिये, हल जोतने वाले और राह चलने वाले सभी मुसाफिर चिल्ला उठे, "श्रमण! उधर मत जाओ। अंगुलिमाल के हाथ में पड़ जाओगे"।

तथागत बिना एक शब्द ही बोले अपने पथ पर आगे बढ़ते ही गये। लोगों ने बार बार भगवान को चेतावनी दी किन्तु उन्होंने अपनी दिशा नहीं बदली और चलते ही रहे।

कोई भी नहीं जानता था कि अंगुलिमाल कौन है और कहां से आया है। उसकी माता को सत्य का पत्ता लग गया था। वह पुत्र से मिलना चाहती थी।

एक दिन वह अकेली ही उस ओर निकल पडीं । वह उसे समझाना चाहती थी और सावधान करना चाहती थी ।

उस समय अंगुलिमाल अपनी हजार अंगुलियों की माला पूरी करना चाहता था । उस में केवल अब एक उंगली की ही कमी थी । उसने आती हुयी माता को देखा । वह उसे मार अपनी माला पूर्ण करने की सोच ही रहा था कि उसे भगवान बुद्ध आते दिखाई दिये । माता को मारने का ख्याल छोड़ वह भगवान के पीछे दौड़ा । पहले तो भगवान को अकेले देख वह चकित हुआ। जहाँ चालीस और पचास आदमी एक साथ जाने में डरते थे वहां भगवान अकेले ही चले जा रहे थे, इस बात पर उसे आश्चर्य हुआ ।

तथागत अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढते चले जा रहे थे अंगुलिमाल अपने पूरे वेग से दौड़ने के बावजूद भगवान को पकड़ नहीं पा रहा था ।

अंगुलिमाल ने सोचा, " यह विचित्र है । यह अद्भुत है । अभीतक ऐसा था कि पूरी गति से भागे जाते एक हाथी, एक घोडे, एक गाडी और एक हिरण तक को मैं पा ले सकता था । अब मैं पूरी गति से दौडने पर भी स्वाभाविक गतिसे चलने वाले इस श्रमण को नही पकड पा रहा हूँ । " वह रुक गया उसने चिल्ला कर भगवान को कहा, " श्रमण रुको । "

नजदीक आते हुये भगवान ने कहा, " अंगुलिमाल ! मैं तो रुका हूँ । अब तू भी पापकर्म करने से रुक जा । मैं इसी लिये यहां तक आया हूँ कि तू भी सत्पथ का अनुगामी बन जाये । तेरे अंदर का 'कुशल' अभी मरा नहीं है । यदि तू उसे केवल एक बार अवसर देगा तो यह तुम्हारी काया पालट कर देगा । "

अंगुलिमाल पर भगवान के वचनामृत का प्रभाव पड़ा । पराजित हो वह बोला, " आखिर इस मुनिने मुझे जीत ही लिया ।" भगवान ने अपने सौम्य शब्दों से एक चण्ड हत्यारे को वस में कर लिया ।

अंगुलिमाल ने अपने गले की अंगुलियों की माला उतार दूर फेक दी और भगवान के चरणों में गिर दीक्षा की याचना की । देवताओं और मनुष्यों के शास्ता बोले, " भिक्षु आ " और अंगुलिमाल की उसी समय दीक्षा हुई ।

भिक्षु अंगुलिमाल को अपना अनुचर बना भगवान श्रावस्ती के जेतवनाराम लौट गये ।

एक दिन राजा प्रसेनजित भगवान के दर्शनार्थ जेतवन गया । तथागत ने राजा से पूछा, " राजन ! क्या मगध नरेश श्रेनिय बिंबिसार के साथ मामला कुछ गडबड़ाया है या वैशाली के लिच्छवियों के साथ अथवा किसी अन्य विरोधि शक्ति के साथ ? "

"भगवान इस प्रकार की कोई बात नहीं है। मेरे राज्य में अंगुलिमाल नाम का एक डाकू रहता है जो मेरी प्रजा को बहुत हानि पहुंचा रहा है। मैं उसका दमन करना चाहता हूँ किन्तु मै अभीतक इस कार्य में सफल नहीं हो सका।"

"राजन ! यदि अभी अंगुलिमाल दाढ़ी मूछ मुण्डाये, काषाय वस्त्र धारण किये एक भिक्षु हो, वह, न किसी को मारता हो, न झूठ बोलता हो, न चोरी करता हो, एकाहारी हो श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता हो तो आप उस से कैसा व्यवहार करेंगे ?"

"भगवान मैं उनको अभिवादन करूंगा, उनके आगमन से खड़ा हो जावूंगा, उन्हें बैठने के लिये प्रार्थना करूंगा, अन्य आवश्यकतायें स्वीकार करने की याचना करूंगा और उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करूंगा परंतु इतना दुष्ट और इतना पतित ऐसा शीलवान् हो ही कैसे सकता हैं ?"

उस समय अंगुलिमाल भगवान से नातिदूर विराजमान थे। भगवान ने अपना दाहिना हाथ निकाल कर उनकी ओर संकेत करके कहा, "राजन ! यह है अंगुलिमाल।"

राजा ने अंगुलिमाल को देखा तो उसकी बोलती बंद हो गयी। भय से उसके रोंगटे खड़े हो गये। यह देख भगवान बोले, राजन भयभीत न हो। यहाँ ड़र का कोई कारण नहीं है।"

राजा का भय और घबराहट दूर हुयी। वह अंगुलिमाल के पास गया और बोला, "पूज्य वर क्या आप सचमुच अंगुलिमाल ही है ?"

"हां राजन।"

"आपके पिता का क्या गोत्र था ? आपकी माता किस गोत्र की थी ?"

"राजन ! मेरा पिता गार्ग्य था और मेरी माता मैत्रायणी गोत्र की थी।"

"गार्ग्य–मैत्रायणी–पुत्र।[४] प्रसन्न हो। मैं आजसे आपकी सब आवश्यकताऐ पूरी करूंगा।"

"महाराज मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। मेरे पास सारी चीजें परिपूर्ण है।"

प्रव्रजित होते ही अंगुलिमाल ने धूतांग व्रत धारण कर लिया था। अरण्य में ही वास करना, भिक्षा पर ही निर्भर रहना, तीन से अधिक चीवरों का व्यवहार न करना, तीन चीवर भी चुने हुये कपड़ों के टुकड़ों से बने हुए का व्यवहार करना। इसी कारण उन्होंने राजा से किसी चीज को लेना स्वीकार नहीं किया।[५]

भगवान के पास पहुंच राजा ने आश्चर्य प्रकट किया, "भगवान यह अद्भुत है, यह आश्चर्य है। आप जंगली को पालतू बना लेते हैं। अदान्त को दान्त कर देते हैं। अशान्त को शान्त बना लेते हैं। यह वही है जिसे मैं लाठी, तलवार से भी बस में नहीं कर सका था। भगवान ने उसे बिना किसी लाठी या तलवार के काबू में कर लिया है। भगवान अब मैं आप से विदा लेता हूँ। मुझे बहुत से कार्य हैं", भगवान की आज्ञा ले उन्हें अभिवादन कर राजा प्रसेनजित चला गया।

एक दिन आयुष्मान अंगुलिमाल पुर्वान्ह समय चीवर पहन पात्र ले श्रावस्ती में भिक्षा के लिये प्रविष्ठ हुये। भिक्षाटन करते हुये उन्होंने एक गर्भवती स्त्री को विलाप करते देखा। उसका गर्भ गड़बड़ा गया था। उसे देख उन्होंने कहा, "प्राणी दुःख पा रहे हैं। उफ प्राणी दुःख पा रहे हैं।"

भोजनानंतर वे भगवान के पास गये। उन्होंने उक्त समाचार भगवान से कहा। सुन कर भगवान अंगुलिमाल से वोले, "तो अंगुलिमाल उस स्त्री के पास जाकर कह, भगिनी! यदि मैंने जन्म से ही प्राणी वध नहीं किया है तो उस सत्य से तेरा मंगल हो। गर्भ का मंगल हो।"

"भगवान यह निश्चित रूप से मेरा जानबूझ कर झूठ बोलना होगा। भन्ते! मैंने तो जानबूझकर बहुत से प्राणियों को मारा है।"

"तो अंगुलिमाल जाकर ऐसा कह, भगिनी यदि मैंने आर्य जन्म में पैदा होने पर जानबूझकर प्राणीवध नहीं किया है तो उस सत्य से तेरा और तेरे गर्भ का मंगल हो।"

"अच्छा भन्ते", कह अंगुलिमाल उस स्त्री के पास गये और उक्त प्रतिज्ञा की। उसका गर्भवती पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने बच्चे को जन्म दिया।

एकांत में योगाभ्यास कर अंगुलिमाल थोड़े ही समय में अर्हत पद को प्राप्त हुये। वे जीवनमुक्तों में से एक हुये।

एक दिन वे चीवर पहन पात्र ले भिक्षा के लिये श्रावस्ती में गये। एक आदमी ने उनके शिर पर ढेला फेंककर मारा, दूसरे ने एक डण्डा फेंककर मारा और तीसरे ने पत्थर से मारा। उनके शिर से खून बहने लगा। उनका भिक्षा पात्र टूट गया और चीवर फट गये। वे बुरी तरह घायल हो गये थे। उन्हे दूरसे ही आते देख भगवान ने कारुणिक स्वर से कहा,

"अंगुलिमाल यह सब सहन कर, यह सब सहन कर।"

एकांत में मुक्ति सुख का आनंद लेते हुये अंगुलिमाल ने कहा, "जो पहले

प्रमादी रहकर भी बाद में अप्रमादी हो जाता है वह बादलों से मुक्त चंद्रमा की तरह लोक को प्रकाशित करता है।"

"मेरे शत्रु भी इस शिक्षा को सीखें, इस मत को मान कर प्रज्ञा के पथ को अंगीकार करें। मेरे शत्रु भी समय रहते मैत्री, विनम्रता और क्षमा शीलता की शिक्षा ग्रहण करें। वे तदनुसार आचरण करें।"

"अंगुलिमाल के रूप में मैं पतनोन्मुख था। मेरी अधोगति थी। मैं जल धारा में नीचे की ओर बहा जा रहा था। तथागत ने मुझे थल पर लाकर खड़ा किया। अंगुलिमाल के रूप में मैं खून से रंगे हाथ वाला था। अब मैं संपूर्ण रूप से मुक्त हूँ।" [७]

लगता है प्रव्रज्या के कुछ ही दिन पश्चात अंगुलिमाल का देहांत हो गया था। [८]

---

१. अंगुलिमालसुत्त–मज्झिमनिकाय।
२. अंगुलिमालत्थेरगाथा–थेरगाथा खुद्दकनिकाय।
३. भगवान बुद्ध और उनका धर्म–अनुवाद भदंत आनंद कौसल्यायन।
४, थेरगाथा।
५. अंगुलिमालसुत्त-मज्झिमनिकाय।
६. वही।
७. वही।
८. धम्मपद अट्ठकथा ३, १६९।

★

महाराष्ट्र के प्रथम भिक्षु

★

पूर्ण

(ई. पू. ४९८)

★

भगवान के जीवन काल में ही बौद्ध धर्म महाराष्ट्र में पहुंचा। पश्चिमी छोर पर समुद्र के किनारे स्थित सुप्पारक बंदरगाह भी अछुता नहीं रह सका। यह पूर्ण भिक्षु के जीवन वृत्तांत से भलिभांति प्रकट होता है। महाराष्ट्र में केवल भगवान का धर्म ही नहीं गया अपितु स्वयं भगवान भी पधारे थे। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि महाराष्ट्र को भगवान बुद्ध के पाद स्पर्श का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

आयुष्मान पूर्ण का जन्म सुनापरंत या महाराष्ट्र के अन्तर्गत सुप्पारक में हुआ था। उनके पिता साधारण श्रेणी के व्यापारी थे। उनके पिता दूर दूर तक व्यापारार्थ जाया करते थे। पूर्ण को भी पारंपारिक व्यवसाय करना पड़ा। वे एक बार व्यापारियों के बड़े सार्थवाह के साथ श्रावस्ती गये। उस समय तथागत श्रावस्ती में ही विराजमान थे। पूर्ण को उन्हें देखने और धर्मोपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कई बार के उपदेश सुनने के पश्चात पूर्ण को गृहस्थ जीवन से वैराग्य हुआ। उन्होंने भगवान से प्रव्रज्या की याचना की। भगवान ने उन्हें दीक्षा दी।

प्रव्रज्या के उपरांत वे वहीं भगवान के पास कुछ दिन रहे। अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने के कारण वे सब के प्रिय भाजन हुये। अपना शेष जीवन वे वहीं बिताना नहीं चाहते थे। अपनी मातृभूमि सुप्पारक लौट कर उसे तथागत के धर्म से परिचित कराना चाहते थे।

अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम श्रावस्ती में रहते अब उन्हें काफी समय बीत चला था। एक दिन भगवान से उपदेश सुनने की कामना से वे शामको उनके पास गये। भगवान को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। उन्होंने शास्ता से प्रार्थना की।

"भन्ते! अच्छा हो, यदि भगवान मुझे संक्षिप्त उपदेश दें। मैं भगवान का उपदेश सुन एकांत में अप्रमादी हो विहरूंगा।" [१]

"तो पूर्ण सुनो। अच्छी प्रकार से ध्यान में रखो" कह भगवान ने इंद्रिय और उनके विषयों के संबंध में संक्षिप्त उपदेश दिया। उपदेश दे भगवान ने पूर्ण से पूछा,

"पूर्ण ! मेरा संक्षिप्त उपदेश सुनकर किस जनपद में चारिका करोगे ?"

"भन्ते ! भगवान का उपदेश सुन मैं यहाँ से सुनापरंत जनपद में जावूंगा।"

भगवान ने कहा, "पूर्ण ! सुनापरंत के लोग चण्ड, कठोर भाषी होते हैं। पूर्ण यदि वे तुम्हें गाली देंगे तो तुम्हे कैसा लगेगा ?"

"भन्ते, यदि सुनांपरंत के लोग मुझे गाली देंगे तो मैं समझूंगा कि वे लोग बड़े अच्छे है, क्यों कि उन्होंने मुझे केवल गाली ही दी है. हाथों से प्रहार नहीं किया।"

"पूर्ण ! यदि सुनापरंत के लोग हाथों से प्रहार करेंगे तो तुम्हें कैसा लगेगा ?'

"भन्ते ! मैं सोचूंगा कि सुनापरंत के लोग बड़े अच्छे हैं, उन्होंने मुझे केवल हाथों से ही ताड़न किया है। ढ़ेले से नहीं मारा है। मैं उनका आभार मानूंगा।"

"पूर्ण ! यदि वे तुम्हें ढ़ेले से मारेंगे तो तुम क्या करोंगे ?"

"भन्ते ! यदि वे मुझे ढ़ेलेसे मारेंगे तो मैं इसलिये उनका आभार मानूंगा कि उन्होंने मुझे डंड़े से नहीं पीटा है।"

"पूर्ण ! यदि वे तुम्हें डंड़े से पीटेंगे तो तुम क्या करोगे ?"

"भन्ते ! यदि सुनापरांत वासी मुझे डंड़े से पीटेंगे तो सोचूंगा कि वे लोग बड़े सभ्य है क्योंकि उन्होंने मुझे शस्त्र से नहीं मारा। इसलिये मैं उनकी प्रशंसा करूंगा।"

"पूर्ण यदि उन्होंने शस्त्र से प्रहार किया तो तुम्हे कैसा लगेगा ?"

"भन्ते ! मै समझूंगा कि वे लोक अच्छे हैं, बहुत अच्छे हैं। उन्होंने मुझे तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा जान से नहीं मारा इसलिये मैं उनका आभार मानूंगा।"

"पूर्ण ! यदि सुनापरंत के लोक तुम्हे तीक्ष्ण शस्त्र से जान से मार डालेंगे तो तुम क्या करोगे ?"

"भन्ते ! कुछ लोग जीवन से तंग आकर आत्महत्या के लिये शस्त्र

खोजते हैं। भन्ते ! मैं समझूंगा कि सुनापरंत के लोग बड़े अच्छे हैं जिन्होंने मुझे शस्त्र द्वारा जान से मार डाला और मुझे शस्त्र की खोज नहीं करनी पड़ी।"

"साधु ! साधु ! ! पूर्ण तुम सुनापरंत में सुखपूर्वक विहार करने में समर्थ होंगे।"[२] पूर्ण के उत्तर से भगवान गदगद हुये। दूर प्रांतो में धर्म प्रचार के लिये भगवान को पूर्ण जैसे ही तरुण भिक्षुओं की जरुरत थी। भगवान का आशीर्वाद लेकर आयुष्यान पूर्ण सुनापरंत के लिये रवाना हुये।

सुनापरंत में वे कुछ दिन अम्बहत्थ पर्वत पर रहे। उनका छोटा भाई चूल–पूर्ण उसी पर्वत के समीप व्यापारियों के गांव में रहता था। उनके वहां होने का चूल–पूर्ण को पत्ता चलने पर वे वहां से चले गये[३]।

पूर्ण अपने परिचितो या रिश्तेदारों के बीच रहना पसंत नहीं करते थे। इसीलिये भाई को ज्ञात होने पर उन्होंने अपना स्थान छोड़ दिया था। वे वहां से मुदुगिरि विहार चले गये। पूर्ण उस बिहार में कुछ दिन विहरते रहे। कहा जाता है कि वहां एक चक्रमण भूमि थी जो चुम्बकीय पत्थर की दीवार से घिरी हुई थी। उस भूमि पर कोई भी नहीं चल सकता था।[४] विहार समुंदर के किनारे होने के कारण सागर की लहरें टकराकर भयानक शब्द करती जिस से पूर्ण के चित्त की शांति भंग हो रही थी। उन्हों ने अपने योगाभ्यास से समुद्र को चुप कराया।

समुद्रगिरि से पूर्ण मातुलगिरि गये वहां भी पक्षियों की आवाज के कारण उन्हें शांति नहीं मिली।

वे अंत में बकुलक ग्राम में जा रहने लगे। वहां रहते समय उनका भाई चूल–पूर्ण पांच सौ व्यापारियों के साथ समुद्री यात्रा पर जा रहा था। जाने के पूर्व वह आयुष्मान पूर्ण के पास गया। उनसे उसने त्रिशरण ग्रहण किया और यात्रा की कुशलता की प्रार्थना की।

उनका जहाज एक ऐसे द्वीप में जा पहुंचा जहां लाल चंदन के वन थे। उन्होंने लाल चंदन के काष्ट से जहाज भरा। इस से द्वीप का यक्ष कुपित हुआ। उसने समुद्र में तुफान पैदा किया। जहाज गोते खाने लगा। हर व्यापारी ने अपने अपने इष्ट देवता की आराधना की। पूण ने भाई की रक्षा के लिये यक्ष का दमन कर समुद्र का तूफान शान्त कराया। सारे व्यापारी सुरक्षित लौट आये।

व्यापारियों ने आयुष्मान पूर्ण को बहुत सारे चंदन के लट्ठे दान दिये। उन्हीं चंदन–काष्टों से पूर्ण ने भगवान के लिये कुटी बनवाई। कहा जाता है कि पूर्ण ने निमंत्रण के रूप में भगवान के पास एक फूल भेजा था। निमंत्रण

स्वीकार कर कई भिक्षुओं को लेकर भगवान वहां पहुचे थे और रात भर पूर्ण के पास रहे तथा सबेरा होते होते लौट गये। लौटते समय भगवान एक स्थल पर नर्मदा नदी के किनारे रुके जहां नागराज ने उनका बड़ा सत्कार किया था।[५]

सुनापरंत में भगवान का संदेश ले जाने वाले पूर्ण प्रथम भिक्षु थे। उन्होंने ही महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म की नीव डाली। वहां उन्होंने कई स्त्री पुरुषों को दीक्षा दी। कहा जाता है कि उन्होंने पांच सौ व्यक्तियों को बौद्ध बनाया था।[६]

यद्यपि पूर्ण पुन: भगवान के पास लौट कर नहीं जा सके तो भी उनके देहांत का समाचार भगवान के पास श्रावस्ती पहुंचा था। सुनापरांत के पूर्ण नाम से वे भिक्षुओं में प्रसिद्ध थे। भ गवान द्वारा पूछे गये प्रश्नों के कारण वे अधिक प्रख्यात हुये थे।

पूर्ण में मिशनरी स्प्रीट थी, उत्साह था, आत्म शक्ति थी और था साहस। इसी कारण वे अकेले ही विचरते रहे।

उनके देहांत का समाचार सुन बहुत से भिक्षु भगवान के पास गये। उन्होंने भगवान से पूछा,

"भन्ते, पूर्ण कुल पुत्र भगवान से संक्षिप्त उपदेश सुन दिवंगत हुआ। उसकी क्या गति हुई होगी? उसका कौनसा जन्म होगा?"

"भिक्षुओ! पूर्ण कुल पुत्र पण्डित था। उसने धर्म को जान लिया था। भिक्षुओ पूर्ण कुल पुत्र परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ।"[७]

---

१. पुण्णेवादसुत– मज्झिमनिकाय।
२. वही।
३. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा २. १० १५।
४. मज्झिमनिकाय अट्ठकथा २. १०१५।
५. खुद्दकनिकाय अट्ठकथा १४९।
६. पुण्णेवादसुत्त–मज्झिमनिकाय।
७. वही।

★

मूढ़ से मेघावी

★

चूलपंथक

(ई. पू. ४९६)

★

शुरू में मनुष्य एक थे। उनमें किसी प्रकार का भेद भाव नहीं था। सामन्त युग आते आते आदमी आदमी से इतना दूर हो गया कि एक दास और दूसरा उसका मालिक बना। समाज के ठेकेदारोंने समाज को वर्गो, श्रेणी और अनुश्रेणियों में बांटा। इस के खिलाप विद्रोह भी होते रहे और समाज सुधारक भी पैदा होते रहे। समाज के कितने ही बड़े बंधन हों किन्तु मानव हृदय से बहने वाली प्रेम रूपी धारा को वह कभी रोकने में समर्थ नहीं हुआ। इस तरह की प्रेम गाथा अतीत के पृष्ठों में छिपी है। इसी प्रकार के मानव हृदय से निकले प्रेम को समाज कर्णधारोंने अंधा और जवानी की भूल कह कर बहिष्कार किया।

चूलपंथक और महापंथक की मां राजगृह के श्रेष्ठी धनश्रेष्ठी की पुत्री थी। उस युग में दास प्रथा थी। दासों का क्रय विक्रय होता था। दास दासियां इंसान नहीं होते थे। उन्हें जब चाहे बेचा खरीदा जा सकता था।

धनश्रेष्ठी की पुत्री अपने पिता के घर काम करने वाले दास से प्रेम करती थी। वे दोनों जानते थे कि समाज के घेरे के बाहर जाना उनके लिये कितना महंगा पड़ेगा। वे एक दूसरे को छोड़ भी नहीं सकते थे। वे उसी घर में पति पत्नी के रूप में भी नहीं रह सकते थे। दोनों ने कही दूर अज्ञात प्रदेश में जा कर रहने का निश्चय किया।

श्रेष्ठी कन्या कीमती जेवरात बाध एक रात अपने प्रियतम् के साथ भाग गई। कुछ दिन दोनों वहां सुख पूर्वक रहे। सेठ कन्या या दास भार्या जब माँ बनने जा रहीं थी तो उसे अपनी कर्तूत पर पश्चाताप हो रहा था। प्रसूति के लियें पितृ गृह जाना चाहती थी। उसका पति इस के लिये तैयार नहीं था। वहां जाने पर उसे इसकी कीमत चुकानी पड़ती। इसी लिये वह कल चलेंगे परसो चलेंगे कह टालता गया।

इस प्रकार उसके पुत्र पैदा होने के दिन नजदीक आने लगे। एक दिन

उसने अकेली ही जाने का निश्चय किया और चली भी गई। घर आने पर पति को पड़ौस से ज्ञात हुआ कि उसकी पत्नी पितृ गृह राजगृह चली गई। वह उसके पीछे दौड़ा। राजगृह पहुंचने से पहले ही रास्ते में उसने बच्चे को जन्म दिया। जिस कार्य के लिये वह वहाँ जाना चाहती थी वह कार्य तो रास्ते में ही सिद्ध हुआ था। इस कारण पति उसे लौटा लाया। रास्ते में पैदा होने के कारण उन्होंने पुत्र का नाम पंथक रखा। दूसरे पुत्र के समय भी ठीक इसी प्रकार की घटना हुई। दोनों का जन्म पथ पर होने के कारण पहले का नाम महापंथक और दूसरे का नाम चूलपंथक रखा गया।

बच्चे कुछ बड़े होने पर अन्य बालकों के साथ खेलने लगे। उन्होंने उन बालकों को दादा दादी, नाना नानी कहते सुना तो वे माता के पास जा पूछने लगे, "मां दूसरे बच्चों को दादा दादी और नाना नानी है क्या हमारा कोई भी नहीं है?"

"बेटा यहां नहीं है। तुम्हारे नाना राजगृह में रहते हैं। वहां तुम्हारे और भी रिश्तेदार है।"

"तो हम वहाँ क्यों नहीं चलते?" महापंथक ने पूछा।

माता उन छोटे बच्चों को क्या कारण बतायें और बताने से भी उनकी समझ में क्या आता। इसी प्रकार बच्चे बार बार पूछते। एक दिन उसने बच्चों के पिता से कहा,

"अपने नाना के घर जाने के लिये ये बच्चे मुझे रोज रोज हैरान करते हैं। क्यों न हम इनको लेकर वहां चले? क्या माता पिता हमारा मांस खा लेंगे। इन बच्चों को देखकर वे खुश होंगे। हम घर नहीं जायेंगे। किसी उपाय से इन बच्चों को पिता के पास भेज देंगे।"

पति पत्नी दोनों बच्चों को लेकर राजगृह के लिये निकले। वहां वे नगर द्वार की एक सराय में ठहरे। दूसरे दिन श्रेष्ठी पुत्री ने बच्चों के साथ आने का संदेशा भेजा। पुत्री का समाचार सुन श्रेष्ठी ने दूत के हाथ बेटी को संदेशा भेजा, 'इस संसार में हमारा न कोई पुत्र है न पुत्री ही। हमारी आंखों के सामने मत आओ। यह भेजा हुआ धन लेकर दोनों जहां इच्छा हो चले जाओ और वहीं सुख पूर्वक रहो। बच्चों को हमारे पास भेज दो।"

पुत्री ने पिता द्वारा भेजा गया धन रख लिया और दोनों बच्चों को दूत के साथ पितृ गृह भेज दिया। वे कहीं अन्यत्र रहने चले गये। तब से दोनों भाई महापंथक और चूलपंथक नाना के पास रहने लगे।[१]

जब जब भगवान बुद्ध राजगृह में विहार करते थे तो महापंथक अपने नाना के साथ जा उनका उपदेश सुनता। नित्य धर्म श्रवण करने से बालक

महापंथक का मन प्रव्रज्या की ओर आकर्षित हुआ। एक दिन उसने अपने नाना से पूछा, "यदि मुझे आज्ञा दें तो मैं प्रव्रजित हूंगा।"

"तात क्या कहते हो? सकल लोक में इस प्रव्रज्या के समान और कोई प्रव्रज्या नहीं है। यदि इच्छा हो तो प्रव्रजित हो जाओ।" श्रेष्ठीने बच्चे को उत्साहित किया।

दूसरे दिन धनश्रेष्ठी महापंथक को लेकर भगवान के पास गया। देखकर भगवान ने पूछा, "क्यों श्रेष्ठी तुमने बच्चा प्राप्त किया है?"

"हां भन्ते। यह मेरा नाती भगवान के पास प्रव्रजित होना चाहता है।"

भगवान ने उसे प्रव्रजित किया। परिपूर्ण वय प्राप्त होने पर महापंथक ने उपसंपदा ग्रहण की और धर्म को हृदयांगम कर अर्हत् हुआ।

भिक्षु जीवन का सुख भोगते हुये उन्होंने सोचा, "मैं यह सुख चूलपंथक को भी दिला सकता हूँ" इसी विचार से वे एक दिन नाना के घर गये। उन्होंने नाना से कहा, "महाश्रेष्ठी यदि अनुज्ञा हो तो मैं चूलपंथक को प्रव्रजित करूंगा?"

"भन्ते! प्रव्रजित करें।" श्रेष्ठी ने प्रसन्न हो कर कहा। उसने सोचा, यह अच्छा है, नहीं तो किसी के पूछने पर कहना पडता कि दास के साथ भागी हुई पुत्री के बच्चे हैं। श्रेष्ठी ने दोनों बच्चों से मुक्ति पाई।[१]

महापंथक ने अपने छोटे भाई चूलपंथक को प्रव्रजित किया। उस समय उनकी उम्र अठारह वर्ष की थी।[१]

प्रव्रजित होने पर उन्हें एक गाथा चार महीने में भी कंठस्थ नहीं हो सकी। भाई की मूढ़ता का पता चलने पर महापंथक को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने चूलपंथक को डांट कर कहा, "तू एक गाथा को चार महीनों में भी याद नहीं कर सका। तू इस धर्म के योग्य नहीं है। तू घर चला जा।"

किन्तु भगवान के धर्म के प्रति चूलपंथक को बहुत प्रेम था। इस लिये घर जाने की उसकी कतई इच्छा नहीं थी।

एक दिन कुमारभृत्य जीवक के घर भगवान बुद्ध और अन्य सभी भिक्षुओं को भोजन का निमंत्रण था। उस समय महापंथक ही भोजन के व्यवस्थापक के तौर पर काम करते थे। एक दिन पहले जाकर जीवक ने उनसे भिक्षुओं की संख्या पूछी। उन्होंने पांच सौ बताई और कहा कि चूलपंथक को छोड़ शेष सभी भोजन करने आयेंगे।

चूलपंथक ने भाई की बात सुन ली थी। उन्होंने सोचा, "स्थविर ने मुझे छोड़ शेष सभी के लिये निमंत्रण स्वीकार किया। मैं भाई के चित्तक्लेश का

कारण हूँ। मेरे लिये इस धर्म में क्या है? मैं गृहस्थ बन पुण्यादि कर्म करके जीवन व्यतीत करूंगा।"

वे दूसरे दिन बड़े सबेरे ही निकल जाना चाहते थे। भगवान ने चूलपंथक के चित्त की बात जान ली। वे भोर में ही चूलपंथक के जाने के मार्ग में द्वार के पास चक्रमण करते रहे। जाने के लिये बाहर निकलते ही चूलपंथक ने भगवान को देखा। पास जा, उन्हें अभिवादन किया। भगवान ने उनसे पूछा,

"चूलपंथक तू इस समय कहां जा रहा है?"

"भन्ते मेरे भाई ने मुझे निकाल दिया है। इस लिये मैं प्रव्रज्या छोड़ जा रहा हूँ।"

भगवान ने उन्हें समझाया और हाथ से पकड़ ले जाकर गंध कुटी के सामने बिठाया। उनके हाथ में एक कपड़े का टुकड़ा देकर भगवान बोले, "इस कपड़े को एक हाथ पर रख दूसरे हाथ से मलता रह और 'रजो हरणं, रजो हरणं' कहता जा।" चूलपंथकने भगवान कीं आज्ञा का पालन किया।

पुर्वान्हि में सब भिक्षु भगवान के साथ जीवक कुमारभृत्य के निवास पर भोजनार्थ चले गये। चूलपंथक सूरज कें तरफ देखते देखते गंध कुटी के सामने बैठ भगवान के दिये शुद्ध कपडे को सहलाते रहे। बार बार कपडे को सहलाने के कारण पसीने से तर हाथ से वह परिशुद्ध कपडा मलीन हो गया। उन्होंने सोचा, "यह अब मलीन हो गया है, यह बदल गया, इसी प्रकार सारे संस्कार अनित्य है, परिवर्तनशील है।" उन्होंने अपने अंदर के रज को भगवान के ज्ञान जल से धोया। उन्हें अनित्य धर्म का बोध हुआ। चित्तक्लेश नष्ट हुये। बाहरी रजसे यह कपडा मलीन हुआ। चित्त में भी रागादि रज हैं। इन रजों को नष्ट कर उन्होंने ज्ञान चक्षु प्राप्त की। उस समय उनके मुख से कुछ गाथायें अपने आप निकल पड़ी। वे अर्हत हो गये। भगवान ने उनके चित्त को जान लिया था।

इधर जीवक गृह में भगवान के साथ सारे भिक्षु भोजन के लिये बैठ गये। जीवक भगवान के हाथ धोने के लिये पानी ले आया। मना करते हुय तथागत ने कहा, "नहीं जीवक। अभी विहार में भिक्षु है।"

महापंथक ने कहा, "भन्ते विवार में कोई भिक्षु नहीं है।"

भगवान ने पुनः कहा, "जीवक विहार में भिक्षु है।"

विहार में भिक्षु है या नहीं यह देखने के लिये जीवक नें एक आदमी को भेजा। चूलपंथक ने अपने भाई का कथन जान लिया था, "मेरे भाई ने कहा कि विहार में कोई भिक्षु नहीं है, मैं उन्हे दिखा दूंगा कि विहार में भिक्षु हैं।

जीवक के भेजे हुये आदमी को विहार में भिक्षु ही भिक्षु दिखाई दिये। लौट कर उसने जीवक को बताया।

भगवान ने उस आदमी से कहा, "जाकर चूलपंथक नाम के भिक्षु को बुला लाओ।"

विहार जाकर जब आदमी ने चूलपंथक के लिये पूछा तो हर कोई अपने आप को चूलपंथक बता रहा था।

भगवान ने उस आदमी को पुन: आज्ञा दी, "प्रथम जो अपने आपको चूलपंथक बताये उसी को हाथ से पकड़ ले आओ। शेष लुप्त हो जायेंगे," जाकर आदमी ने वैसा ही किया।

भोजन से संतुष्ट हो भगवान ने जीवक से कहा, "जीवक चूलपंथक का पात्र लो। आज वही अनुमोदन-उपदेश देगा।"

जीवक ने वैसा ही किया। चूलपंथक ने सिहनाद करते हुये तरुण सिंह के समान गर्जना कर पाण्डित्यपूर्ण देसना की।[५]

भगवान के साथ सब भिक्षु विहार चले गये। तथागत बिश्राम के लिये गंधकुटी में प्रविष्ठ हुये। अपरान्ह में भिक्षु जहां तहाँ बैठ उक्त अद्भूत घटना के बारे में चर्चा करने लगे।

चूलपंथक विशेषत: रूपज्झान और समाधि में पटु थे जब कि उनका भाई महापंथक अरूपज्झान और विपस्सना भावना में।

कहा जाता है कि एक बार श्रावस्ती में भिक्षुणियों को उपदेश देने की चूलपंथक की बारी आयी। उन भिक्षुणियों ने उनसे खास उपदेश की आशा नहीं की क्यों कि उन्होंने उनके संबंध में सुन रखा था कि वे एक गाथा को चार माह में भी याद नहीं कर सके। उनको आश्चर्य में डालते हुये उन्होंने उपदेश दिया। सभी भिक्षुणियां तल्लीन हो सुनती रहीं। यह सुन भगवान ने चूलपंथक को सावधान किया कि रात तक भिक्षुणियों को उपदेश न दिया करें क्यों कि उस दिन रात हो जाने से उपदेश के बाद अपने आरामों में लौटने को भिक्षुणियों को देर हो गई थी।

चूलपंथक की प्रशंसा में भगवान ने एक बार कहा था कि चूलपंथक उन

भिक्षुओं में अग्र है जो स्मृति शक्ति से रूप को निर्माण करते है और जो क्रमिक प्रसारण वाले है ।

---

१. चूलपंथकवत्थु–धम्मपद अट्ठकथा ।

२. वही ।

३. चूलपंथकत्थेर अपदान–अपदानपापि–खुद्दकनिकाय ।

४. चूलपंथकत्थेरवत्थु–धम्मपद अट्ठकथा ।

५. वही ।

★

ऐश्वर्य के दाता

★

शीवली

(ई. पू. ४९५)

★

वे सात वर्ष माता के गर्भ में रहे। सात दिन की प्रसव वेदना के पश्चात उनका जन्म हुआ।[१] जन्मते ही उन्होंने धम्मसेनापति सारिपुत्र के साथ बात की थी।

आयुष्मान सीवली का जन्म पज्जनिक ग्राम में हुआ था। उनकी माता सुप्रवासा (सुप्पवासा) कोलिय राज कन्या थी। वह प्रणीत (स्वादिष्ट) भोजन दान देने वालोंमें अग्र थी। उनका पिता महालि लिच्छवी था।[२]

सुप्रवासा ने सात वर्ष तक गर्भ को ढोया। सात दिन की प्रसव वेदना के बाद भी जब बच्चा पैदा नहीं हुआ तो वह अपने पति से बोली, "मरने से पहले मैं भगवान बुद्ध को उपहार दूंगी।" उसके पति ने भगवान के लिये उपहार भेजा। भगवान ने उपहार स्वीकार कर सुप्रवासा को आशीर्वाद दिया। भगवान बुद्ध के आशीर्वाद के बाद सुप्रवासा ने बच्चे को जन्म दिया। उसने अपने पति से प्रार्थना की कि सात दिन तक तथागत और उनके शिष्यों को भोजन करा गौरव आदर दिखाये।

कहा जाता है कि उस दिन महामौद्गल्यायन के दायक के घर निमंत्रण था। उनके कहने से उसने सुप्रवासा को अवसर देनें के लिये अपना निमंत्रण वापस लिया था।[१] पुत्र प्राप्ति के बाद भगवान ने सुप्रवासा का निमंत्रण स्वीकार किया। भगवान उन दिनों कौलियों के पज्जनिक ग्राम में ही विहार करते थे। पुर्वान्ह समय चीवर पहन पात्र ले भगवान सुप्रवासा के निवास पधारे। कोलिय पुत्री सुप्रवासा ने भगवान को स्वादिष्ट भोजन से संतुष्ट किया। भगवान के भोजन कर चुकने के बाद सुप्रवासा एक ओर बैठ गई। तथागत ने उसको उपदेश दिया–

"भोजन करानेवाली भोजन करनेवाले को चार चीजें प्रदान करती है, कौनसी चार, वह आयु देती है, वह वर्ण देती है, वह सुख देती है और बल देती है। सुप्रवासे आयु देकर वह आयु की हिस्सेदार होती है। वर्ण देकर वह वर्ण

की हिस्सेदार होती है। सुख देकर वह सुख की हिस्सेदार होती है और बल देकर वह बल की हिस्सेदार होती है। "[४]

तत् पश्चात भगवान ने स्वादिष्ठ भोजन कराने वालियों में सुप्रवासा को मुख्य बताया था। सुप्रवासा को प्रधान उपसिकाओं के बराबर का दर्जा प्राप्त है औरबौद्ध साहित्य में अनाथपिण्डिक तथा विशाखा के नाम के साथ उसका नाम भी लिया जाता है।

सुप्रवासा सात दिन तक बुद्ध-प्रमुख संघ का आदर सत्कार करती रही। सातवे दिन सुप्रवासा नवजात शिशु को ले आयी। उसने भगवान और भिक्षुओं को प्रणाम कराया। आयुष्मान सारिपुत्र ने उस बालक से पूछा–

"बालक क्या तू सुख पूर्वक है? किसी प्रकार का दु:ख तो नही है?"

"भन्ते सात वर्ष तक गर्भ जैसे नरक में रहते हुये कैसा सुख?" बच्चेने कहा।

मेरा पुत्र धम्मसेनापति के साथ बात करता है, सुप्रवासा खुशीसे फूली न समाई।

उसे प्रसन्न देख तथागत ने पूछा, "सुप्रवासे क्या और भी इस प्रकार के पुत्र की इच्छा रखती हो?"

"भगवान इस प्रकार के सात बच्चों की कामना करती हूँ।" सुप्रवासा का उत्तर था[५]।

सुप्रवासा की अनुमति पर सारिपुत्र ने कुछ वर्ष बाद बालक सीवली को प्रव्रजित किया। महामौद्गल्यायन उनके आचार्य हुए।[६]

कहा जाता है कि प्रव्रज्या के दिन सारिपुत्र से बात करते वक्त ही सीवली ने स्तोतापन्न फल प्राप्त कर लिया था। प्रव्रज्या पाने के बाद वे एकांत स्थान पर एक कुटिया में रहने लगे। वे अपने जन्म के प्रमाद के कारण पर ध्यान योग करते रहे। इस प्रकार अपनी तृष्णा पर विजय पाकर वे अर्हत हुये।

एक समय भगवान बुद्ध आयुष्मान रेवत को देखने खदिरवन जा रहे थे। उनके साथ सारिपुत्र, आनंद और बहुतसे दूसरे भिक्षु भी थे। तीस योजन की दूरी तय करनी थी। भगवान ने आयुष्मान सीवली को भी साथ लिया ताकि यात्रा में खाने पीने की कोई कमी न रहे। उनके रहने मात्र से इच्छित चीजें मिल जाया करती थी।

सीवली भोजन दान और अन्य उपहार पाने में बडे ही भाग्यशाली थे। इसी कारण भगवान ने लाभियों में उन्हे अग्र बताया है। कहां जाता है कि

सीवली कैसी भी मरुभूमि में क्यों न चले जाये परंतु उन्हें वहां भी उनकी इच्छित वस्तु मिल ही जाती थी।

एक बार अपना भाग्य आजमाने के लियें पांच सौ भिक्षुओं को लेकर हिमालय चले गये। कहा जाता है कि वहां भी उनकी हर प्रकार की आवश्यकताये पूरी हुयी। गंधमादन पर नागदत्त नाम के देवता ने सात दिन तक उनकी सेवा की थी[७]।

आज भी बौद्ध देशों में विशेषत: श्रीलंका में लोग ऐश्वर्य प्राप्त करने के हेतु अपने घरों में तथा वाहनों में सीवली की तसवीर लगाते हैं और प्रति दिन उसके सामने धूप बत्ती जलाते हैं। लोगोंका बिश्वास है कि उनकी तसबीर लगाने से धन की प्राप्ति होती है।

---

१. सीवलीत्थेरवत्थु–धम्मपद अट्ठकथा।
२. सीवलीत्थेर अपदान–अपदान–खुद्दकनिकाय।
३. सुप्पवासासुत्तं– उदान।
४. सुप्पवासासुत्तं– अंगुत्तरनिकाय।
५. सुप्पवासासुत्तं– उदान।
६. सीवलीत्थेर अपदान–अपदान।
७. थेरगाथा अट्ठकथा १. १३८।

★

खोपड़ियों को बजाकर भविष्य बताने वाले कवि–हृदय

★

वंगीस

(ई. पू. ४९१)

★

वे मृतों की खोपड़ियों को अपने नाखुन से बजाकर कहते, "इस खोपड़ी का आदमी नरक में गया, इसका आदमी पशुयोनी में जन्मा, यह मनुष्य योनी में पैदा हुआ और यह भूत प्रेत की योनी में उत्पन्न हुआ।" इस के साथ साथ वे त्रैय वेदों के ज्ञाता भी थे। राजगृह में उनकी कीर्ति फैल गयी थी।

वंगीस राजगृह के रहने वाले थे। उनका जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे मरे आदमियों की खोपडियां बजा कर यह बताया करते थे कि वह किस जगह पैदा हुआ है। परिव्राजक का भेष धारण कर वे श्रावस्ती गये। वहां जेतवन के निकट कुटी बना कर रहने लगे। मृतों के बारे में बताने से उन्हें धन और यश दोनों मिला। कोई अपने माता के संबंध में पुछता, कोई पति या पत्नी के बारे में। इसके लिये उन्हें किसी से दस कार्षापण, किसी से बीस और किसी से पांच सौ प्राप्त होती।[१]

एक दिन सुगंधित फूल मालायें लिये जाते कुछ लोगों से अन्य आदमियों ने पूछा, "तुम कहां जा रहे हो?"

"हम विहार धर्म श्रवणार्थ जा रहे है।"

"वहां जा कर क्यो करोंगे? वहां हमारे वंगीस ब्राह्मण के समान कौन है? हमारे वंगीस मृत व्यक्तियों के मुण्डों को बजा कर उनके उत्पत्ती स्थान बतातें है।"

"तुम्हारा वंगीस क्या जानता है? हमारे शास्ता के मुकाबले में वह कुछ भी नहीं है।" विहार जाते लोगों ने उत्तर दिया।

"हमारे वंगीस के समान तुम्हारे शास्ता नहीं हैं।"

वंगीस या शास्ता का ज्ञान बढ़ाने से क्या फायदा सोच लोग वंगीस को भगवान के पास ले गये। उनका आगमन जान भगवान ने नरक योनी में, मनुष्य योनी में, देवयोनी में और पशुयोनी में उत्पन्न आदमियों की खोपड़ियाँ

मंगवायी । इसी प्रकार एक क्षीणाश्रव का सिर भी मंगवाया । उन पांचों को क्रमशः रखवाया ।

भगवान के पूछे जाने पर वंगीस ने प्रथम चारों के संबंध में ठीक ठीक बताया । पांचवें नरमुण्ड की ओर संकेत कर तथागत ने प्रश्न किया–

" यह किसकी खोपड़ी है ?"

उसे अपने नाखून से बजा कर वंगीस मौन रहे ।

तब तथागत ने कहा, " वंगीस तुम इसके बारे में नहीं जानते हो ?"

" भगवान मैं नहीं जानता ।"

भगवान बोले, " इसे मैं जानता हूँ ।"

वंगीस ने अपनी पराजय स्वीकार की और उसी समय तथागत के पास प्रव्रजित हो गये ।[२] उनके उपाध्याय निग्रोधकल्प स्थविर थे । वे दोनों अग्गालव चेतिय में रहने लगे ।

आळवि के अग्गालव चेतिय में रहते अभी उन्हें बहुत दिन नहीं हुये थे । वे अभी नये ही थे । एक दिन बहुत सी स्त्रिया अलंकृत हो अग्यालय आराम गयी । उन्हें देख उनके मन में अनभिरति पैदा हुयी । उस समय उनके मुख से कुछ गाथायें निकल पड़ी ।[३]

वंगीस के पास कविका हृदय था । इसके लिये वे प्रसिद्ध भी थे । जिस प्रकार कवि काल्पनिक लोक में जीते हैं, काल्पनिक लोक का निर्माण करते हैं उसी प्रकार वंगीस कभी कभी विराग से राग में प्रविष्ट हो कवित्व करने का प्रयास करते ।[४]

वंगीस अपने उपाध्याय के साथ रहते थे । अपनी प्रतिभा के कारण वे कभी कभी अच्छे भिक्षुओं से भी घृणा करने लगते थे । वे उस गलती को समझते भी थे । समझमें आने पर पश्चाताप करते और गाथाओं में अपना मनोभाव प्रकट करते ।[५]

एक बार आनंद जेतवनाराम श्रावस्ती में रहते थे । पुर्वान्ह समय चीवर पहन पात्र ले श्रावस्ती में भिक्षार्थ प्रविष्ट हुये । आयुष्मान वंगीस उनके पीछे पीछे चल रहे थे । उनका चित्त स्थिर नहीं था । मन में राग था । उनके मन की हालत अजीब थी । इस स्थिति को प्रकट करने के लिये उन्होंने कई गाथाये रची ।[६]

श्रावस्ती में ही रहते वक्त भगवान ने एक दिन भिक्षुओं को संबोधित किया, " भिक्षुओं चार अंगों से समन्वित वाचा सुभाषित वाचा कहलाती है,

कौन से चार? भिक्षु कहने योग्य ही कहता है, अयोग्य वचन नहीं कहता है। धर्म ही कहता है, अधर्म नहीं, प्रिय वचन ही बोलता है, अप्रिय वचन नहीं। सत्य ही कहता है, असत्य नहीं। ये चार प्रकार की वाचा, सुभाषित वाचा कहलाती है।"

तब वंगीस आसन से उठ एक कन्धे पर उत्तारासंघ रख भगवान के समीप गये। भगवान को अभिवादन कर वे बोले, "भन्ते! मैं समझ गया; सुगत् मैं समझ गया।"

"क्या वंगीस तू समझ गया?"

तब आयुष्मान वंगीस ने भगवान के सामने गाथायें कहीं,

"तमेव वाचं भासेय्य, यायतानि न तापये।
परे न च विहिंसेय्य, सावं वाचा सुभासिता॥
पियवाचं व भासेय्य, या वाचा पटिनंदिना।
यं अनादाय पापानि, परेसं भासते पियं॥
सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनंतनो।
सच्चें अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतिट्ठिता॥
यं बुद्धो भासते वाचं, खे मं निब्बाण पत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमा ति॥" [७]

एक बार श्रावस्ती में सारिपुत्र का धर्मोपदेश सुन वंगीस बहुत प्रसन्न हुये। उस समय उन्होंने उनकी प्रशंसा में कई गाथायें कहीं। उन्होंने कहा,

"गम्भिरपञ्ञो मेधावी, मग्गामग्गस कोविदो।
सारिपुत्तो महापञ्ञो, धम्मं देसेति भिक्खुनं॥
संखित्तेन पि देसेति, वित्थारेन पि भासति।
साळिकायिव निग्घोसो, पटिभानं उदीरयि॥" [८]

वंगीस जब भी किसी की तारीफ करना चाहते तो अनायास ही उनके मुंह से गाथायें फूट निकलती। वे भरी सभा में भगवान के सामनें किसी की भी प्रशंसा करने में आगे पीछे नहीं देखते थे। महामौद्गल्यायन के बारे में भी उन्होंने कई गाथायें कहीं थी। [९] इसी प्रकार भगवान के प्रथम शिष्य कौण्डिन्य के संबंध में भी गाथायें कही। [१०]

एक समय भगवान चंपा में गग्गरा के किनारे भिक्षुओं के साथ विहार करते थे। वहां भिक्षु और उपासक, उपासिकायें भगवान का उपदेश सुन रहे थे। यह सुन्दर रमणीय दृश्य देख वंगीस का कविहृदय चुप नहीं रह सका। भगवान की स्तुति में वे कहते गये।

"चन्दो यथा विगतवलाह् के नमे,
विरोचति विगतमलो व भाणुमा।
एवं पि अंगीरस त्वं महामुनि,
अतिरोचसि वससा सब्बलोक ॥" [११]

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर उन्होंने तथागत की प्रशंसा में कई गाथायें कहीं,

"दिवाविहारा निक्खम्म सत्थुदस्सन कम्मता।
सावको ते महावीर, पादे वंदति वंगीसोति ॥
परो सहस्सं भिक्खुनं सुगतं पयिरुपासति।
देसेन्ते विरजं धम्मं निब्बानं अकुतो भयं ॥
सुणन्ति धम्मं विमलं, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सोभति वत सम्बुद्धो भिक्खुसंघपुरक्खतो ॥
नागनामोसि भगवा, इसीनं इसिउत्तमो।
महामेघो वहुत्वान, सावके अभिवस्सति ॥"

उक्त गाथाओं के कहने पर भगवान ने उनसे पूछा, "वंगीस क्या तुम ये गाथायें सोच कर बनाते हो और फिर इस प्रकार के स्थान पर कहते हो ?"

"नहीं भन्ते। मैं पहले सोच कर नहीं कहता।"

"तो क्या तुम पहले बिना सोचे ही गाथायें कहते हो ?"

"हां भन्ते" कह उन्होंने पुनः गाथायें कही। [१२]

उनकी प्रतिभा देख भगवान ने उन्हें प्रतिभावानो में प्रधान घोषित किया था। (पटिभानतानं) वे भिक्षुओं में कवि के नाम से प्रख्यात थे।

अर्हत् पद प्राप्त करने पर उन को जिस सुख का अनुभव हुआ था उन्होंने उसे कई गाथाओं में व्यक्त किया। [१३]

वंगीस अपने उपाध्याय के अंतसमय तक उनके साथ रहे। निग्रोधकल्पक का देहांत अग्गालव चेतिये में ही हुआ। कहा जाता है कि उस समय वंगीस उनके पास नहीं थे। [१४] वंगीस पहुँचे तो आदत वस ऊपर हाथ झुकाये पड़े थे। अपने उपाध्याय के अर्हत्व प्राप्ति के संबंध में उनके मन में संदेह हुआ। उन्हें अपने विहार से बड़ा लगाव था। भिक्षाटन के बाद एक बार वे अपने कमरे में प्रवेश करते तो शामतक या दूसरे दिन सबेरे तक बाहर नहीं निकलते थे। उपाध्याय के परिनिर्वाण के संबंध में वंगीस ने भगवान से गाथाओं में पूछा।

बताया जाता है कि वंगीस का जन्म बंग में हुआ था किन्तु इसके पूर्ण प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वे राजगृह से श्रावस्ती गये थे और वही प्रव्रजित

हुये। वे स्वयं कहते हैं कि वंग में जन्म लेनें के कारण और शब्दों पर अधिकार होने के कारण उनका नाम वंगीस पड़ा तथा उसी नाम से प्रसिद्ध हुये। [१५]

---

१. वंगीसत्थेरवाथु धम्मपद अट्ठकथा।
२. वही।
३. वंगीससंयुत्त– निक्खंतसुत्तं– संयुत्तनिकाय।
४. अरतिसुत्तं –बोनविवंसंयुत्तं वंगीससंयुत्तं।
५. नसलसुत्तं ,,।
६. अनदसुत्तं ,,।
७. सुभासितसुत्तं ,,।
८. सारिपुत्तसुत्त ,,।
९. मोग्गल्लानसुत्तं ,,।
१०. कोण्डन्यसुत्तं ,,।
११. गग्गरासुत्तं ,,।
१२. परोसहस्ससुत्तं ,,।
१३. वंगीससुत्तं ,,।
१४. थेरगाथा अट्ठकथा २. २११।
१५. वंगीसत्थेर अपदान– अपदान–खुद्दकनिकाय।

★

भिक्षुणी पुत्र

★

कुमार काश्यप

(ई. पू. ४९०)

★

उनकी माता भिक्षुणी थी। उनका जन्म जेतवनाराम श्रावस्ती में हुआ था। वे राजा बिम्बिसार के महल में पले और सात वर्ष की उम्र में प्रव्रजित हुये।

कुमार काश्यप की माता राजगृह के श्रेष्ठी की कन्या थी। बचपन से ही तथागत का उपदेश सुनने के कारण उसे प्रव्रजित होने की अपार इच्छा हुयी परंतु वह माता पिता की अनुज्ञा प्राप्त नहीं कर सकी थी।

सयानी होते ही काश्यप माता का विवाह एक धनी परिवार में हुआ। प्रव्रजित होने का ख्याल उसने अभी भी नहीं छोड़ा था। पति गृह की चहार दीवारी के भीतर उसका दम घुटने लगा। उसका पति उससे बेहद प्रेम करता था। वह पत्नी की हर इच्छा पूरी करने में अपना सौभाग्य समझता था।

उसने एक दिन अपने पति से प्रव्रजित होने की आज्ञा मांगी। वह पत्नी को निराश करना नहीं चाहता था। उसने उसे अनुज्ञा दे दी और उत्सव के साथ प्रव्रज्या संपन्न कराई। वह दुर्भाग्य से देवदत्त की पक्षपाती भिक्षुणियों के पास प्रव्रजित हुई। उसको इसका ज्ञान नहीं था।

प्रव्रज्या के कुछ ही दिनों बाद उसके मां बनने के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। यह देख आस पास की भिक्षुणियाँ एक दूसरी के कान में फुसफुसाने लगीं। उन्होंने काश्यप माता से गर्भ का कारण पूछा, "बहन यह किसका है ?"

"मैं नहीं जानती। मेरा शील किसी प्रकार से कुलुशीत नहीं है।"

अन्य भिक्षुणियों ने उसका विश्वास नहीं किया। उन्होंने इस बात की खबर देवदत्त को दी। देवदत्त ने उसे व्यभिचारिणी समझ बदनामी से बचने के लिये उसे गर्भ सहित मार डालने का विचार किया। यह सुन निर्दोष भिक्षुणी भय के कारण कांप उठी। अपनी हितचिंतक भिक्षुणी से उसने याचना की, "यह मुझे बिना सोचे समझे मारना चाहता है। मैं इस देवदत्त के लिये प्रव्रजित नहीं हुयी। मुझे भगवान के पास ले चलो। शास्ता इसका निर्णय करेंगे।"

जेतवन ले जा कर भगवान को खबर दी गयी। तथागत ने समझ लिया था कि उसे गृहस्थ जीवन में ही गर्भ रहा था किन्तु जनप्रवाद से बचने के लिये तथागत ने राजा बिंबिसार, अनाथपिण्डिक, उसका छोटा भाई, विशाखा और अन्य प्रमुख व्यक्तियों को बुलवा कर गर्भिणी की परीक्षा करवाई और यह मामला विनयधर उपालि स्थविर को सौंप दिया।

उपालि स्थविर ने राजा आदि मण्डली को सभागृह में बुलाया। विशाखा काश्यप माता को कमरे में ले गयी। उसने पूछ ताछ कर गर्भ की परीक्षा की। उसने गर्भिणी से दिन मास आदि का पता लगाया। विशाखाने उपालि को जानकारी दी कि उसे गृहस्थ जीवन में गर्भ रहा है। उसे इसकी जानकारी न होने के कारण वह प्रव्रजित हुई। उपालि स्थविर ने सभा के बीच उसे निर्दोष एवं परिशुद्ध घोषित किया।[१]

बच्चा पैदा होने पर राजा बिंबिसार उसे राजमहल ले गया। उसने बच्चे को दायी को सौप दिया। वह अन्य बालकों के साथ महल में रहने लगा।

एक दिन खेलते वक्त उसने एक कुमार को मारा। उसने उसे मातृहीन कह चिढाया। कुमार काश्यप राजा के पास जा कर बोला, "देव ! मेरी माता कहा है ?"

राजा ने दायी को दिखा कर कहा, "यह तेरी माता है।"

"देव। यह स्त्री मेरी माता नहीं है।" बालक ने कहा।

इस बालक को और नहीं ठगा जा सकता सोच राजा बोला, "तात् ! तेरी माता भिक्षुणी है।'

कुमार काश्यप अभी सात वर्ष के ही थे। माता के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक ही था। वे माता को देखने के लिये तड़प उठे। बाल बुद्धि से उन्होने कहा,

"देव ! मै भी भिक्षु बनूंगा।"

तात् बहुत अच्छा कह राजा ने सात वर्ष के कुमार काश्यप को भगवान के पास ले जाकर प्रव्रजित कराया। कुमार अवस्था में प्रव्रजित होने से और कुमार की तरह महल में पले होने के कारण उनका नाम कुमार काश्यप हुआ। वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुये। जब कभी भगवान उन्हें कोई खाने की चीज देना चाहते तो कुमार काश्यप के नाम से ही पुकारते।

प्रव्रजित हो भगवान से कर्मस्थान की शिक्षा ग्रहण कर अरण्यवास के लिये चले गये। वे वहां अधिक दिन नहीं रह पाये। वे भगवान के पास लौट आये और पुनः कर्मस्थान की शिक्षा ग्रहण कर वहीं चले गये।

एक रात्रिके समय सारे अंधवन को प्रकाशित करते हुये एक देवता कुमार काश्यप के पास गया। एक ओर खड़ा हो उसने उनसे पूछा, "एक बमि है जो दिन में जलती है और रात में धूआ फेकती है। ब्राह्मण ने कहा, अपना शस्त्र लो सुमेथ। और खोदो।"

"खोदने से सुमेध को एक लम्बा डण्डा मिला। इसी प्रकार आगे खोदने से मेंढक जैसी फूली हुयी चीज मिली। उसके बाद संदिग्ध पथ, फिर छलनी, कछुआ, कुल्हाड, मांस का टुकड़ा और अंत में नाग मिला। उसने नाग को न मार नमस्कार करने को कहा।" यह कह कर देवता चला गया।

इस का अर्थ भगवान बुद्ध को छोड़ और कोई नहीं जानता था। दूसरे दिन कुमार काश्यप भगवान के पास जेतवन गये। उन्होंने गत रात की घटना भगवान को सुनाई। तथागत ने सभी का उत्तर दिया,

"चार महाभूतोवाला शरीर बमि है। वह दिन में जो कार्य करता है उसके बारें में रात को सोचता है, रात को सोचना तर्क वितर्क करना रात का धूवा हैं; रात के तर्क वितर्क को दिन में कार्यान्वित करना दिन का प्रज्वलन है। ब्राम्हण अर्हत् है ? सुमेध तपस्वि साधक है, शस्त्र प्रज्ञा है। खुदायी उत्साह है, लम्बा ड़ण्ड़ा अविद्या है, मेंढक जैसी फूली वस्तु क्रोध है, संदिग्ध पथ संदेह हैं, छलनी पांच प्रकारकी दृष्टियां हैं जैसे काम निवारण की दृष्टि, द्रोह दूर करने की दृष्डि, चित्त एकाग्रता की दृष्टि, चित्तकी व्याकूलता दूर करने की दृष्टि, संदेह को हटाने वाली दृष्टि। कर्म पांच उपादान स्कंध हैं जैसे, रूप उपादान स्कंध, वेदना उपादान स्कंध, संज्ञा उपादान स्कंध, संस्कार उपादान स्कंद, और विज्ञान उपादान स्कंध। कुल्हाड़ी है पांच प्रकार के काम गुणों का निवारण करने वाली दृष्टि। मास का टुकड़ा कामसुख का आनंद है और नाग अर्हत है।" सुन कर कुमार काश्यप ने भगवान के उपदेश का अभिनंदन किया।[२]

भगवान द्वारा देसित उक्त उपदेश को अपने योगाभ्यास का विषय बना कुमार काश्यप ने अर्हत् पद प्राप्त किया।[३]

कुमार काश्यप को साथ न रख सकने के कारण और उन्हे न देख सकने के कारण उनकी माता पुत्र शोक से बारह वर्ष तक निरंतर आंसू बहाती रही। वह पुत्र वियोग के दुःख को नष्ट नहीं कर सकी। एक दिन उसने कुमारकाश्यप को गली में भिक्षाटन करते देखा। पुत्र प्रेम के वेग को न रोक सकने के कारण वह पुत्र पुत्र चिल्ला कर उन्हे पकडने दौड़ी। किन्तु वह ठोकर खा गिर पड़ी। उसके स्थनों से दूध की धारा बहने लगी जिससे उसका वस्त्र भीग गया। वह उठी। कुमार काश्यप के पास जा उसने उनको हाथ से पकड़ा।

उन्होंने सोचा, "मेरे प्रति जो प्रेम है वही इसके अर्हत्व के मार्ग में रोड़ा

बना हुआ है। यदि इस समय मैं मीठा बोलू तो इसका विनाश ही होगा।" इसी कारण उन्होंने माता से कहा, "तुम स्नेह को भी दूर नहीं कर सकती हो तो क्या करते विचरण करती हो ?"

बारह बरस के बाद पुत्र से स्नेह के शब्द के बजाय कठोर शब्द सुन पुत्र के लिये जो प्रेम था वह नष्ट हो गया। उसने उसी दिन अर्हत पद को प्राप्त किया।[४]

कहा जाता है कि वे एक प्रभावशाली वक्ता थे। यह पायासि के साथ की गयी चर्चा से स्पष्ट होता है। भिक्षुओं की भारी जमात के साथ कोशल में विचरण करते हुये वे सेतव्य नामक नगर पहुंचे। वे वहां सेतव्य की उत्तर सिसम वन में ठहरे। पायासि को प्रसेनजित राजा का विशेष अनुग्रह प्राप्त था। लगता है वह एकदम नास्तिक था। उसका मत था कि न परलोक है, न सत्कृत्य है न दुष्कृत्य, न कर्मो का विपाक है। इसी ख्याल को लेकर वह कुमार काश्यप के पास गया था। उन्होंने उसे कर्म और पुर्नजन्म के संबंध में समझाया।[५] इस घटना को भगवान को अस्तियों पर स्तूप बनाने के बाद ही की बतायी जाती है।[६]

उनकी वाक् शक्ति को देख उन्हे वक्ताओं में प्रमुख घोषित किया गया था।

पूर्ण बीस वर्ष होने पर उनकी उपसंपदा हुयी। उनकी उपसंपदा पर संघ में यह संदेह हुआ था कि उनकी उम्र पूर्ण बीस वर्ष की नहीं है। यह कह कर भगवान ने संदेह का निवारण किया कि माता के गर्भ में बिताये दिनों के साथ पूर्ण बीस वर्ष होते है।

उनके विशेष मित्रों में पुक्कुसाति, दारुचीरिय, दब्बमल्लपुत्र और समिय थे।

---

१. कुमारकस्सपत्थेरवत्थु–धम्मपद अट्टकथा।
२. वम्मकसुत्तं–मज्झिमनिकाय।
३. धम्मपद अट्ठकथा।
४. कुमारकस्सपत्थेरवत्थु–धम्मपद अट्ठकथा।
५. पायासिराजन्यसुत्तं–दीघनिकाय।
६. विमानवत्थु अट्ठकथा प. २९७ पी टी एस।

★

विवाह– मंडपसे पलायन करनेवाले भिक्षु

★

रेवत

(ई. पू. ४८९)

★

उनका विवाह बचपन में ही हुआ था। विवाह के दिन एक सौ बीस वर्षीय दादी को देख, वे और उनकी पत्नी भी इसी स्थिति को प्राप्त होंगे सोच विवाह मण्डप से ही भाग खड़े हुये।

रेवत धम्मसेनापति सारिपुत्र के सबसे कनिष्ट भ्राता थे। एक के बाद दूसरे को घर छोड जाते देख सारिपुत्र की माता गहुत दुःखी हुई। वह भगवान के धर्म में विश्वास नहीं करती थी। वह कमसे कम छोटे रेवत को ही घर में रख परंपरा की रक्षा कराना चाहती थी। इसी लिये सात वर्ष की उम्र में उसने रेवत का विवाह रचा।

विशाल संपत्तिका त्याग कर सारिपुत्र के प्रव्रजित होने पर उनकी तीनों बहनें चाला, उपचाला और सीसुपचाला तथा दोनों भाई चन्द्र और उपसेन प्रव्रजित हो गये। वे सब सारिपुत्र के जीवन से प्रभावित थे जिस से उन्हों ने उनका अनुकरण किया।[१] अब केवल रेवत ही घर में शेष थे।

माता सारिपुत्र के साथ विशेषतः बड़ी क्रोधित थी। क्यों कि वह सोचती थी कि उन्होंने सभी को घर से भगाया था। माता को इस बात का डर था कि कही रेवत को भी प्रव्रजित न कर दें।

विवाह संपन्न होने पर बरात बिदा होते समय ज्येष्ठ जनों ने वर वधू को आशीर्वाद दिया। उनका आशीर्वाद था, "अपनी दादी के समान लम्बी उम्र पाओ।"

"कहाँ है मेरी दादी ?" रेवत ने उसे देखने की जिज्ञासा की। लोगोंने उसे दिखाया। यह एक सौ बीस वर्ष की थी। उसे देख रेवत ने सोचा मेरी वधू भी इसी प्रकार जरा जीर्ण होगी। जीवन में क्या रखा है ? घर से भाग आने का उन्होंने निश्चय किया। बरात कुछ दूर जाने पर उन्होंने शौच जाने का बहाना किया। वे यान से उतरे और एक झाड़ी में गये। छोटीसी वधू और बराती उनकी प्रतीक्षा करते रहे किन्तु वे नहीं लौटे।

रेवत भाग कर समीपस्थ विहार गये। उन्होंने अपना परिचय दिया और प्रव्रज्या की प्रार्थना की। पहचानते ही भिक्षुओं ने प्रव्रजित किया। कहा जाता है कि रेवत का भविष्य जान सारिपुत्र ने विहारों को भिक्षुओं को बता रखा था कि माता पिता की अनुमति बिना ही उनके भाई रेवत के आते ही प्रव्रजित कर दिया जाये।[२]

रेवत की प्रव्रज्या का समाचार सुन सारिपुत्र उन्हें देखने जाना चाहते थे। उन्होंने इस संबंध में भगवान से पूछा। तथागत बोले, "सारिपुत्र अभी जल्दी मत करो। कुछ दिन ठहर जाओ, मैं भी साथ चलूंगा।

रेवत अपने उपाध्याय से शिक्षा पा कर वहाँ से खदीरवन चले गये। वहाँ रहते उन्होंने योगाभ्यास करके तृष्णा पर विजय पाया। वे अर्हत् हुये। वर्षावास का काल उन्होंने वहीं बिताया।

कुछ दिन पश्चात सारिपुत्र एक बार पुन: भगवान के पास गये। रेवत को देखने चलने के संबंध में उन्होंने भगवान से पूछा। भगवान चलने को तैयार हुये। रास्ता लम्बा और दुष्कर था। इसी कारण सीवली स्थविर को साथ ले लिया गया ताकि उनके पुन्यप्रताप से मार्ग में भोजन आदि की कोई समस्या न रहे। भगवान शैकड़ो भिक्षुओं के साथ दो महीने में खदीरवन पहुंचे।

भगवान खदीरवन से श्रावस्ती लौट आये। रेवत को देखने जाने का समाचार विशाखा ने सुना। तथागत उसी के पूर्वाराम में विहार करते थे। दूसरे दिन भगवान विशाखा के निमंत्रण पर उसके घर भोजन करने पधारें। भोजनोपरांत उपासिका ने भगवान को अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गई। तब उसने भगवान से पूछा, "भन्ते कुछ भिक्षुओं से सुना है कि आयुष्मान रेवत खदीरवन में विहार करते हैं और भगवान उन्हें देखने गये थे। मैंने उनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। क्या सचमुच खदीरवन रमणीय है?"

भगवान बोले,

"उपासिके! गांव हो या अरण्य, जहां भी अर्हत् वास करते हैं, वह स्थान रमणीय है।"

रेवत हमेशा खदीरवन में रहे। उन्हें अरण्यवास ही प्रिय था। इसके लिये वे प्रसिद्ध भी थे। भगवान ने उन्हें अरण्यवासियों में प्रमुख घोषित किया था।

वे समय समय पर भगवान और सारिपुत्र के दर्शनार्थ खदीरवन से श्रावस्ती आया करते थे। यह उनका नियम सा बन गया था। श्रावस्ती में कुछ दिन रह वे दोनों का उपदेश सुनते और उनके दर्शन कर पुनः खदीरवन लौट जाते।

वे केवल एकांतवास प्रिय करने वाले ही नहीं थे बल्कि मौन भाव भी उन्हें प्रिय था। उनके इस मौनता से कभी कभी लोग उन्हें गलत समझ बैठते थे।

एक बार वे भगवान और सारिपुत्र के दर्शनार्थ श्रावस्ती आये हुये थे। अतुल गृहपति ने उनका आगमन सुना। वे अपने कई साथियों को लेकर उनका उपदेश सुनने पहुँचे। रेवत ने उस समय उन्हें किसी भी प्रकार उपदेश देने से इनकार कर दिया। वे एकांतवास का आनंद ले रहे हैं कह कर उन्हें लौटा दिया। शिकायत करते हुये अतुल गृहपति साथियों को लेकर लौट गया।

इसी प्रकार एक बार सम्मुंजनी स्थविरने उन्हें गलत समझा था। सम्मुंजनी स्थविर हमेशा ही झाड़ू लगाते रहते थे। इसी कारण उनका यह नाम पड़ा। जब वे रेवत के कमरे में झाड़ू मारने गये तो वे पालथी मार ध्यानस्थ बैठे थे। सम्मुंजनी नें सोचा कि वह बड़ा आलसी है। रेवतने उनके मन की बात जान ली। स्नान के पश्चात रेवत ने उन्हें अपने पास बुलाया। स्नान कर सम्मुंजनी उनके पास पहुंचे तो रेवत ने भिक्षु–कर्तव्य पर उन्हें उपदेश दिया। उनका उपदेश सुन वे अर्हत पद को प्राप्त हुये। इसके बाद उनका झाड़ू लगाना वंद हुआ। सारे कमरे बिना झाड़ू लगाये ही रहे। जब भगवान के पास इसकी शिकायत गई तो तथागत ने कहा कि सम्मुंजनी निर्दोष है क्योंकि अब उसके लिये वहीं काम करते रहने की आवश्यकता नहीं है।

गृहत्याग के काफी समय बाद रेवत अपने जन्म ग्राम गये थे। वहां से खाली हाथ नहीं लौटे। वे अपने तीनों बहनों के पुत्रों को लेते आये। यह सुन सारिपुत्र उन्हें मिलने गये। सारिपुत्र के आगमन को जान रेवत ने तीनों भानजों को सावधान किया। थोड़े ही समय में रेवत ने उन्हें अच्छी शिक्षा दी थी। उनका स्वभाव और व्यवहार देख सारिपुत्र बहुत प्रसन्न हुये। उस समय पर सारिपुत्र ने अपने भाई रेवत की प्रशंसा में दो गाथाये कही।[४]

एक बार वे अपने नियमानुसार श्रावस्ती गये। यही उनकी अंतिम यात्रा सिद्ध हुई। भगवान का उपदेश सुन दर्शन के बाद सारिपुत्र से मिलकर अपने नियम के अनुकुल नगर के समीपवर्ती वन में विहार करने चले गये। कुछ चोर चोरी कर के राजपुरुषों के भय से उधर से भागे। उन्होंने चोरी का माल जहां रेवत विहार करते थे वहां फेक दिया और जान बचा कर भाग गये। राजपुरुष पीछा करते वहां गये और उन्होंने रेवत से नातिदूर चोरी का सामान पाया। रेवत को ही चोर समझ वे उन्हें राजा के पास ले गये। राजा के पूछन पर उन्होंने अपने चोरी की असंभवता प्रकट करने और साथ साथ राजा को उपदेश देने के उद्देश से कई गाथाये कही।[५] कहा जाता है कि अंत में पालथी मार

आकाश में उड़े और वहां तब तक स्थिर रहे जब तक वे अपने आप जल नहीं गये।[६]

---

१) खदीरवनिय–रेवतत्थेरवत्थु–धम्मपद अट्ठकथा।

२) वही।

३) वही।

४) थेरगाथा।

५) वही।

६) थेरगाथा अट्ठकथा १.५५५।



डॉ. भिक्षु सावंगी मेधंकर

अन्य प्रकाशन :

१) पाली वाङ्मय में बोधिसत्व सिद्धान्त
२) यदि बाबा न होते
३) An Intelligent Man's guide to Buddhism
४) दर्शन (वेद से मार्क्स तक)
५) राम कहानी राम की जबानी
६) मनुस्मृति जलाई गई, क्यों?
७) बुद्ध और उनके समकालीन भिक्षु
८) बौद्ध जीवन पद्धति
९) धम्म पदं
१०) एशिया के महान बौद्ध सम्राट
११) बौद्ध-धर्म एक बुद्धिवादी अध्ययन